# इकाई 17

# कुमारसम्भव (पञ्चम सर्ग)
# (श्लोक संख्या 1 से 60 की व्याख्या )

इकाई की रुपरेखा



## 17.0उद्देश्य

इस प्रस्तुत इकाई में कालिदास रचित कुमारसम्भवम् महाकाव्य के पंचम सर्ग के श्लोक संख्या १ से लेकर ६० तक का अध्ययन किया जा रहा है। इन श्लोकों के माध्यम से पार्वती की शिव के प्राप्ति के लिये की गई तपस्या का वर्णन है। और पार्वती के इस तपस्या से प्रसन्न होकर शिव स्वयं ब्रह्मचारी का रुप धारण करके उसकी अन्तिम परीक्षा लेने के लिये तपोवन आये। इसी प्रसंग में उस ब्रह्मचारी तथा पार्वती की सखी के मध्य वार्तालाप हुई। और यही इस इकाई का अभिधेय है ।

## 17.1 प्रस्तावना

महाकवि कालिदास ने १७ सर्गों में कुमारसम्भवम् नामक महाकाव्य की रचना की है, जिसमें हिमालय की पुत्री पार्वती की शिव की पतिरुप मे प्राप्ति के लिये घोर तपस्या, शिव-पार्वती का पाणिग्रहण, पुत्र कार्तिकेय का जन्म तथा उसके द्वारा तारकसुर के वध की कथा है। पञ्चम सर्ग के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम की पराकाष्ठा का वर्णन है। जिसकी भावाभिव्यक्ति के लिये कालिदास ने अत्यन्त सरल, सुबोध, पारिमार्जित एवं प्रसाद गुण से सम्पन्न भाषा का प्रयोग किया है। अनावश्यक अलंकारो के प्रयोग से बचते हुए स्थान स्थान पर उपमा, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा, यमक आदि अलंकारों का सहज एवं स्वाभाविक प्रयोग किया है। ब्रह्मचारी वेषधारी शिव और पार्वती के मध्य संवाद स्थापित करके इन्होने काव्य-सौन्दर्य की शोभा को और बढाया है। संवाद प्रणाली के माध्यम से व्यक्ति के चरित्र के विभिन्न भाव और अधिक स्फुट रुप में प्रकट होते हैं। और इसका प्रत्यक्ष उदाहरण शिव-पार्वती संवाद है, जिसके माध्यम से पार्वती के विभिन्न प्रकार के भावों का प्रकाशन हुआ, और उनका चरित्र-चित्रण में प्रेम, त्याग, तपस्या, ढृढनिश्चय, समर्पण आदि मानवीय भावना का उत्कृष्टतमरुप में दर्शन होता है। जिससे मनुष्यरुप में जन्मी पार्वती का स्थान देवतुल्य हो गया हौ। इसप्रकार कालिदास की कुमारसम्भवम् निश्चित ही भारतीय काव्य-जगत की एक उत्कृष्ट रचना है।

## 17.2 कुमारसम्भवम् (पंचम सर्ग) श्लोक संख्या १ से ६० तक की व्याख्या

**तथा समक्षं दहता मनोभवं, पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।**
**निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती, प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ॥१॥**

**प्रसंग-** कामदेव का शिव के द्वारा भस्म हो जाने पर पार्वती ने स्वंय के सौन्दर्य की निन्दा किया।

**अनुवाद-** पूर्वोक्तप्रकार से अपने समक्ष कामदेव को जलते हुए देव शंकर के द्वारा भग्नमनोरथ वाली होकर अपने हृदय से अपने रूप की निन्दा करने लगी, क्युन्कि सौन्दर्य का फल तो अपने प्रियजनों को आकृष्ट करना होता है।

**भावार्थ-** देवी पार्वती की सहायता करने के प्रयास में जब कामदेव को शिव के द्वारा पार्वती के नेत्रों के ही सामने भस्म कर दिया गया तो पार्वती निराशाभाव से आप्यायिय होकर विलाप करने लगीं। और उन्होने स्वयं के सौन्दर्य को ही कामदेव के नष्ट होने का कारण भी माना। एवं अत्यन्त मार्मिक हृदय स्वयं के सौन्दर्य को ही व्यर्थ मानने लगी, क्युन्कि किसी के भी सौन्दर्य की सार्थकता तभी तक है, जब तक कि वह अपने प्रिय को आकृष्ट कर सके। लेकिन यहां तो उनका सौन्दर्य कामदेव के विनाश का कारण ही बन गया।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** समक्षम्=अक्ष्णोः समीपम् समक्षम्, दहता=दह्+शतृ प्रत्यय, तृतीय, एकवचन, पार्वती= पर्वत+अण्+डीप्, भग्नमनोरथा= भग्नः मनोरथो यस्याः सा भग्नमनोरथा (बहुब्रीही समास), सौभाग्यफला= सौभाग्यं फलं यस्याः सा(बहुब्रीही समास)।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** अर्थातरन्यास अलंकार।

**छन्द-** वंशस्थ।

**इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां, समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।**
**अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं, तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः ॥२॥**

**प्रसंग-**पार्वती निराश होने की स्थिति में भी शिवप्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रही और तपस्या करने का निश्चय किया।

**अनुवाद-** (ऐसी स्थिति मे निराश होकर भी) पार्वती समाधि में अपने मन को एकाग्र करके अपने सौन्दर्य को सफल बनाने की चेष्टा करने लगी, अन्यथा उसप्रकार का प्रेम और वैसा पति, ये दोनो कैसे प्राप्त किए जा सकते हैं?

**भावार्थ-** कामदेव के भस्म होने से घोर निराशा में होने के बावजूद पार्वती ने शिवप्राप्तिरुप अपने उद्देश्य का परित्याग नही किया, तथा और अधिक गति से प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया। अतः अपने प्रयत्न को और उच्च श्रेणी में ले जाते हुए उन्होने एकाग्रचित्त होकर अत्यन्त कठोर तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया। क्युन्कि इतने महान शिव के प्रेम की प्राप्ति एवं पतिरुप मे उनकी प्राप्ति करना इतना सरल न था।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** पतिश्च= पतिः+च, अवन्ध्यरूपताम्= न वन्ध्यं रूप यस्याः सा अवन्ध्यरूपा (बहुब्रीही समास), तपोभिरात्मनः= तपोभिः+आत्मनः, द्वयं= द्वौ अवयवो यस्य तद् द्वयम्, इयेष= इष्, लिट् लकार, प्रथम पुरूष, एकवचन, आस्थाय= आ+स्था + ल्यप्

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार=** अर्थान्तरन्यास अलंकार।

**छन्द=** वंशस्थ।

**निशम्य चैनां तपसे कृतोद्यमां, सुतां गिरीशप्रतिसक्तमानसाम्**

**उवाच मेना परिरभ्य वक्षसा, निवारयन्ती महतो मुनिव्रतात् ।।३।।**

**प्रसंग-** माता मेना ने तपस्या करने से पार्वती को रोकने का प्रयत्न करते हुए कुछ कहना प्रारम्भ किया।

**अनुवाद-** मेना ने गिरीश (शिव) के प्रति आसक्त मन वाली (अतः, शिव की प्राप्ति हेतु) पुत्री पार्वती को तप के लिये ढृढ संकल्प रूप उद्योग वाली सुनकर उसे ह्रदय से लगाकर महान् अर्थात् बहुत बडे मुनि व्रत से रोकते हुए कहा।

**भावार्थ-** किंतु पार्वती के ये लिये शिवप्राप्तिरूप तपस्या का मार्ग इतना सरल न था। तपस्या करने के प्रारम्भ में ही उनकी माता मेना पार्वती के इतने कष्टदायक तपस्या के विषय मे सुनकर ही अत्यन्त दुखी हो गई। ममता से वशीभूत होकर अपनी पुत्री को इस कठोर तपस्या को करने से रोकने लगीं। अतः अपनी पुत्री को गले लगाते हुए द्रवित भाव से इस विषय में कहना प्रारम्भ किया।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** कृतोद्यमाम्= कृतः उद्यमः यया सा ताम् (बहुब्रीही समास), गिरीशप्रतिसक्तमानसाम्= गिरीशे प्रतिसक्तं मानसं यस्याः सा ताम् (बहुब्रीहि समास), कृतोद्यमाम्= कृतः उद्यमः यया सा (बहुब्रीही समास), परिरभ्य= परि+रभ्+ ल्यप्, मुनिव्रतात्= अत्र 'वारणार्थानामीप्सितः' इति अपादाने पञ्चमी।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** परिकर।

**छन्द-** वंशस्थ।

**मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवतास्तपः, क्व वत्से! क्व च तावकं वपुः।**

**पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं, शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः ।।४।।**

**प्रसंग-** मेना ने अपनी दुहिता से कहा कि तुम्हे तपस्या के लिये कही बाहर जाने की आवश्यकता नही है। गृह मे हीं सारे साधन उपलब्ध हैं।

**अनुवाद-** हे पुत्री! अभीष्ट देवता तो घरों में होते (ही) हैं (तो फिर ये) तप कहां? (और) तुम्हारा शरीर कहां? कोमल शिरीष का पुष्प भ्रमर का पादों को सहन कर ले, किन्तु पक्षी के (चरणपात) को नही (सह सकता है)।

**भावार्थ-** मेना ने अपनी पुत्री को सम्बोधित करते हुए कहा कि तुमको इस स्थान पर आकर इतना कठोर व्रत करने की क्या आवश्यकता है? तुम्हारा शरीर अत्यन्त कोमल है। वह इतने कठिन तपस्या को करने में सक्षम नही है। तुम्हारा ये शरीर शिरीष के पुष्प की तरह सुकुमार है। अतः जिसप्रकार शिरीष का पुष्प केवल छोटे और हल्के भवरों का ही भार सहन कर सकता है, बृहद् आकार वाले

पक्षी के चरणों के भार को सहन नही कर सकता है। उसीप्रकार तुम इस तपरूपी भार को सहन करने में समर्थ नही हो। अतः इस निर्जन खुले स्थान में रहने की क्या आवश्यक्ता है? सारे इष्ट विष्णु आदि देवताओं का देवस्थान तो तुम्हारे अपने गृह में ही उपलब्ध है। अतः तुम वहां पर भी रहकर पूजा-अर्चना कर सकती हो। सारी पूजा-सामग्री भी वहां पर सरलता से उपलब्ध हो जायेगी। अतः हे पुत्री! अपने गृह की ओर प्रस्थान करो।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** देवतास्तपः= देवताः+तपः, मनीषिता= मनसः ईषिता इष्टा मनीषिता (षष्ठी तत्पुरुष समास), शिरीषपुष्पम्= शिरीषस्य पुष्पम्, सहेत= सह्, आत्मनेपदी, विधिलिङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** विषमालंकार तथा दृष्टान्तालंकार।

**छन्द-** वंशस्थ।

**इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां, शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात्।**

**क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः, पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ॥५॥**

**प्रसंग-** किंतु मेना अपनी पुत्री के दृढ निश्चय को बदलने में सफल न हो सकी।

**अनुवाद-** इसप्रकार उपदेश देती हुई मेना दृढ संकल्प वाली अर्थात् स्थिर मनोरथ वाली पुत्री को मुनिव्रतरूप उद्योग को रोकने में समर्थ न हो सकीं। ईप्सितार्थ (के प्राप्ति हेतु) दृढनिश्चय वाले मन को एवं नीचे की ऒर बहते हुए जल को कौन पलट सकता है?

**भावार्थ-** इसप्रकार मेना ने पार्वती को ऐसी तपस्या करने से बहुत रोकने का प्रयत्न किया। किन्तु वह पार्वती के इस दृढ प्रतिज्ञा को रोकने में समर्थ न हो सकीं। जैसे नीचे की ओर जाती हुई नदी या जल की धारा के प्रवाह की दिशा को कौन बदल सकता है। वैसे ही पार्वती के इस निश्चय को भी परिवर्तित करना माता मेना के लिये असम्भव ही रह गया।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** ध्रुवेच्छाम्= ध्रुवा इच्छा यस्याः सा ताम् (बहुब्रीही समास), ईप्सितार्थ्= ईप्सितः अर्थः (कर्मधारय समास), ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयम्= ईप्सितार्थे स्थिरः निश्चयः यस्य सः तम् (बहुब्रीही समास), निम्नाभिमुखम्= अभिमुखम्= अभिगतं मुखं यस्य तत् अभिमुखम् (बहुब्रीही समास), अनुशासती= अनु+शास्+ शतृ+ डीप्, शशाक= शक, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** दीपक, अर्थान्तरन्यास।

**छन्द=** वंशस्थ।

**सूक्ति- क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः, पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्** अर्थात् दृढनिश्चय वाले मन को एवं नीचे की ऒर बहते हुए जल को कौन पलट सकता है? अर्थात् दृढ निश्चयी मनुष्य का निर्णय को बदलना असम्भव होता है।

**कदाचिदासन्नसखीमुखेन सा, मनोरथज्ञ पितरं मनस्विनी।**

**अयाचतारण्यनिवासमात्मनः, फलोदयान्ताय तपः समाधये ॥६॥**

**प्रसंग-** पिता की आज्ञा प्राप्त करने के लिये पार्वती ने सखी को उनके पास भेजा।

**अनुवाद-** किसी समय मनस्विनी उस (पार्वती) ने अपनी इच्छा को जानने वाले पिता (हिमालय) से, अपने हृदय के समीप सखी अर्थात् प्रिय सखी के द्वारा (शिवप्राप्तिरुप) फल की प्राप्ति पर्यन्त तपरूप समाधि के लिये स्वंय के वन में निवास करने की याचना की।

**भावार्थ-** अपने निश्चय पर अटल रहते हुए पार्वती ने अपने पिता हिमालय से तपस्या करने की आज्ञा प्राप्त करनी चाही। किंतु इसके लिये उसने लज्जा एवं मर्यादावश स्वंय अपने पिता से साक्षत् वार्ता करना उचित नही समझा। अतः उसने एक अत्यन्त प्रिय सखी के माध्यम से अपने पिता तक अपनी याचना पहुचायी कि वह उसे वन में निवास करने की आज्ञा प्रदान करें।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** अयाचतारण्यनिवासमात्मनः= अयाचत+अरण्यनिवासम्+आत्मनः (सन्धि), आसन्नसखीमुखेन=आसन्ना चासौ सखी आसन्नसखी (कर्मधारयसमास), तस्या मुखं आसन्नसखीमुखं तेन (षष्टी तत्पुरुष समास), मनोरथज्ञम्= मनोरथं जानातीति मनोरथज्यः तम् (उपपद तत्पुरुष समास), मनस्विनी=मनस्+विनि+ङीप्।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** परिकर।

**छन्द-** वंशस्थ।

**अथानुरूपाभिनिवेशतोषिणा, कृताभ्यनुज्ञा गुरुणा गरीयसा।**

**प्रजासु पश्चात्प्रथितं तदाख्यया, जगाम गौरी शिखरं शिखण्डिमत्॥७॥**

**प्रसंग-** पिता हिमालय द्वारा पार्वती को आज्ञा प्राप्त हो गई। और पार्वती 'गौरी पर्वत' पर चली गयी।

**अनुवाद-** इसके पश्चात् (पार्वती) योग्य आग्रह से सन्तुष्ट हुए अत्यन्त पूज्य पिता के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके, तपस्या के अनन्तर प्रजाजनो में गौरी इस नाम से प्रसिद्ध हुए, मयूरों से युक्त शिखर पर गई।

**भावार्थ-** अतः पिता हिमालय को जब अपनी दुहिता की इच्छा का पता चला कि श्रेष्ठतम शिव को अपने वर के रूप में प्राप्त करना चाहती है और इसके लिये वह तपस्या करना चाहती हैं। तो पूर्णतया अपनी पुत्री के निर्णय से सन्तुष्ट होकर प्रसन्न चित्त से उन्होने पार्वती को तपस्या करने के लिये आज्ञा दे दी। आज्ञाप्राप्ति के पश्चात पार्वती ने हिमालय के जिस शिखर पर तपस्या करना प्रारम्भ किया, वही शिखर बाद में पार्वती के ही दुसरे नाम 'गौरी" से संसार में प्रसिद्ध हुआ।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** अथानुरूप= अथ+अनुरूप, अनुरूपाभिनिवेशतोषिणा= रूपस्य योग्यम् अनुरूपम् (अव्यवीभावसमास), अनुरूपं चासौ अभिनिवेशः (कर्मधारयसमास), तेन तुष्यतीति अनुरूपाभिनिवेशतोषि तेन (उपपद तत्पुरुषसमास), कृताभ्यनुज्ञा= कृता अभ्यनुज्ञा यस्यै सा (बहुब्रीही समास), तदाख्यया= तस्या आख्या तया (षष्टी तत्पुरुष समास), शिखण्डिमत्= प्रशस्ताः शिखण्डिनः सन्ति यस्मिन् तत् (बहुब्रीही समास), प्रथितम्= प्रथ्+णिच्+क्त, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, जगाम्= गम्, लिट् लकार, प्रथम पुरूष एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** परिकर।

**छन्द-**वंशस्थ।

**विमुच्य सा हारमहार्यनिश्चया, विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम्**

**बबन्ध बालारुणबभ्रु वल्कलं, पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति ॥८॥**

**प्रसंग-**

**अनुवाद-**सुदृढ निश्चय वाली उस (पार्वती) ने (अपने) चंचल (हिलते हुए) हारसूत्रों के द्वारा चन्दन को पूर्णतः पोंछ देने वाले मोतियों के हार को त्याग दिया अथवा उतार दिया (तथा) नवोदित सूर्य के रक्तपीत वर्ण के सदृश पिङ्गलवर्ण वाली स्तनों की ऊचाई से छिन्न अवयव वाली वृक्ष की छाल को धारण कर लिया।

**भावार्थ-** पार्वती के द्वारा गले के हार को त्यागकर वल्कल के वस्त्र को धारण कर लिया, जिसकी कान्ति नवोदित सूर्य के समान लाल-पीले वाले वर्ण वाली थी। और उसी वल्कल के वस्त्र से वह अपने शरीर को ढकती थी।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** अहार्य= न हार्यः इति अहार्यः (नञ् समास), अहार्यनिश्चया= अहार्यः निश्चयः यस्याः सा (बहुब्रीही समास), विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम्= विलोलाश्च प्रविलुप्तं चन्दनं तम् (बहुब्रीही समास), बालारुणबभ्रु= बालश्चासौ अरुणः बालारुणः (कर्मधारय समास), पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति= पयसां धरौ पयोधरौ (षष्ठ तत्पुरुष समास), विमुच्य= वि+मुच्+ल्यप्, बबन्ध=बन्ध, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** परिवृत्ति अलंकार।

**छन्द-** वंशस्थ।

**यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहैर्जटाभिरप्येवमभूत्तदाननम्।**

**न षट्पदश्रेणिभिरेव पंकजं, सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते ॥९॥**

**प्रसंग-** तपस्विनी के रुप में भी पार्वती का सौन्दर्य देदीप्यमान था।

**अनुवाद-**उसका (पार्वती का) मुख जिसप्रकार अलंकृत एवम् विभूषित केशों से मधुर लगता था, (उसीप्रकार) जटाओं द्वारा भी मधुर लग रहा था। कमल न केवल भ्रमरपंक्तियों से प्रकाशित होता है, अपितु सिवार से युक्त होकर भी प्रकाशित होता है।

**भावार्थ-** पार्वती ने तपस्वियों के समान ही अत्यन्त सादगीपूर्ण जीवन जीना प्रारम्भ कर दिया। अतः सारी सुख-सुविधाओं का भी त्याग कर दिया। किंतु इतने त्यागमय जीवन जीने के पश्चात भी उसका सौन्दर्य किञ्चित् मात्र भी कम न हुआ। अतः जिसप्रकार महल मे रहते हुए उसके केश सुव्यवस्थित, पुष्पादि आभूषणों से सुसज्जित रहते थे, और सुन्दर लगते थे, उसी प्रकार की सुन्दरता एक तपस्विनी के रुप में भी बरकरार रही। पार्वती के केश वैसे ही अभी भी सुन्दर लगते थे, जैसे कि कमल का फूल कहीं भी सुन्दर लगता है, चाहे वह भ्रमरपंक्तिओं के मध्य में हो चाहे सिवार के बीच में रहे।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** तदाननम्= तस्या आननं तदाननम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), शिरोरुहैः= रोहन्तीति रुहाः शिरसि रुहाः इति शिरोरुहाः तैः शिरोरुहैः (सप्तमी तत्पुरुष समास), षट्पदश्रेणिभिः= येषां ते षटपदाः (बहुब्रीहि समास), तेषां श्रेणिभिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), सशैवलासङ्गम्= शैवलानां

आसङ्गः शैवलासङ्गः (षष्ठी तत्पुरुष समास) तेन स वर्तते (बहुब्रीहि समास), प्रसिद्ध=प्र+षिण्+क्त, तृतीया बहुवचन, शिरोरुहैः= रोहन्तीति रुहाः रूह 'इगुपधेति' कः प्रत्ययः शिरसि रुहास्तैः मिरोरुहैः।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** प्रतिवस्तूपमा अलंकार।

**छन्द-** वंशस्थ।

**प्रतिक्षणं सा कृतरोमविक्रियां, व्रताय मौञ्जीं त्रिगुणा बभार याम्।**

**अकारि तत्पूर्वनिबद्धया तया, सरागमस्या रसनागुणास्पदम्॥१०॥**

**प्रसंग-** किंतु महल मे निवास करने वाली पार्वती का तपोवन में कटिप्रदेश घायल हो चुका था।

**अनुवाद-** उस पार्वती ने रोमाञ्चित करने वाली, तीन लडियों वाली जिस मौञ्जी अर्थात् मेखला को तपोनियमके लिये धारण किया, पहली बार बांधी गई उस मेखला ने पार्वती के मेखला बांधने के स्थान 'कटिप्रदेश' को रक्तवर्ण कर दिया।

**भावार्थ-** कोमल अंगो वाली पार्वती ने तपस्या करने के उद्देश्य से तपस्वियों के वस्त्रादि धारण करना प्रारम्भ कर दिया। कितुं जहां महल मे रहने पर पार्वती के वस्त्र-आभूषण भी उनके कोमल शरीर के अनुसार ही होते थे,उसके विपरीत, तपस्विनि वाले उनके वस्त्रादि इतने कोमल नही थे, अतः जैसे ही उन्होने तीन लडियों वाली मेखला को धारण किया, जो कि कठोर थी, और इस कठोरता के कारण पार्वती का कटिप्रदेश रक्त वर्ण का हो गया।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** प्रतिक्षणम्= क्षणे क्षणे प्रतिक्षणम् (अव्ययीभाव समास), कृतरोमविक्रियाम्=रोम्णां विक्रिया इति रोमविक्रिया (षष्टी तत्पुरुष समास), कृता रोमविक्रिया यया सा ताम् (बहुब्रीही समास), रसनागुणास्पादम्= रसनायाः गुणः रसनागुणः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्य आस्पदम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), मौञ्जीम्= मुञ्ज+अण्+ङीप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, बभार= भृ, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** परिवृत्ति।

**छन्द-** वंशस्थ।

**विसृष्टरागादधरान्निवर्तितः, स्तनाङ्गरागारुणिताच्च कन्दुकात्।**

**कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः, कृतोऽक्षसूत्रप्रणयी तया करः॥११॥**

**प्रसंग-** शरीर के कई अंगों को घायल करने के बावजूद धीरे-धीरे पार्वती को रुद्राक्ष इत्यादि मालाओं से प्रेम हो गया।

**अनुवाद-** उस (पार्वती) के द्वारा लाक्षारस की लालिमा का परित्याग किये हुए अधरों से तथा स्तनों के अंगराग से लोहित वर्ण वाले कन्दुक से हटाये गये हस्त (अब) कुशों को उखाडने से व्रणित अंगुलियों वाला और रूद्राक्ष की माला से प्रेम करने वाला कर दिया गया।

**भावार्थ-** तपस्विनी बनकर वन में जीवन व्यतीत करने में पार्वती इतनी रत हो चुकी थी कि पहले जहां पिता के घर रहते हुए वह अपने हाथों का उपयोग अपने श्रृंगार के लिये ही करती थीं, किंतु यदि श्रृंगार करने में उनके हाथों को शरीर के किसी अंग को कष्ट होता था, तो वह अपने श्रृंगार का भी

त्याग कर देती थीं अतः वह अपने अधरोष्ठ को सुन्दर बनाने के लिये लाक्षारस की लाल रंग से रंगना भी बन्द कर देती थीं। किंतु अब वह अपने हाथों का उपयोग मात्र कुशों के अग्रभाग को तोडकर लाने में तथा रुद्राक्ष की माला बनाने में करती थी। जिसके कारण उसके हाथों की ऊंगलियां निरन्तर चोटिल ही रहती थीं। किंतु तपस्या में तल्लीन पार्वती को कोई भी बाधा उनके कार्य मे विघ्न नही डाल पाते थे।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** विसृष्टरागादधरान्निवर्तितः= विसृष्टरागात्+ अधरात्+निवर्तितः, स्तनाङरागारुणिताच्च= स्तनाङगरागारुणितात्+च, कृतोऽक्षसूत्रप्रणयी= कृतः+अक्षसूत्रप्रणयी, विसृष्टरागात्= विसृष्टः रागः यस्मात् सः तस्मात् (बहुब्रीही समास), स्तनाङरागारुणितात्= स्तनयोः अङगरागः स्तनाङगरागः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तेन अरुणितः तस्मात् (तृतीया तत्पुरुष समास), निर्वर्तितः= नि+वृत्+ णिच्+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** पर्याय।

**छन्द-** वंशस्थ।

**महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः, स्वकेशपुष्पैरपि या स्म दूयते।**

**अशेत सा बाहुलतोपधायिनी, निषेदुषी स्थण्डिल एव केवले ॥१२॥**

**प्रसंग-** पार्वती ने महल के सारे सुख-सुविधाओं का त्याग करके वन मे प्राप्त होने वाले साधनों से ही जीवन व्यतीत करने लगी।

**अनुवाद-** जो (पार्वती) अत्यन्त बहुमूल्य शय्या अथवा पलंग पर करवट लेते समय अपने केशों में लगे हुए (सुसज्जित) पुष्पों के गिरने से भी कष्ट प्राप्त करती थी, वही पार्वती अब अपनी बाहु को तकिया बनाकर मात्र (बिस्तर से रहित) भूमि पर ही बैठी हुई सोती थी।

**भावार्थ-** महल में निवास करते हुए पार्वती जब अपनी शय्या पर सोती थी, और यदि संयोगवश एक पुष्प भी उसके नीचे आ जाता था तो उतने मात्र से भी उसे कष्ट का अनुभव होता था, किंतु वही पार्वती अब बिना बिस्तर के ही कठोर भूमि पर अपनी बाहु को तकिया बनाकर बैठे-बैठे सो भी जाती थी।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** स्वकेशपुष्पैरपि=स्वकेशपुष्पैः+अपि (सन्धि), महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः= महान् अर्हः यस्याः सा महार्हा (बहुब्रीही समास), महार्हा चासौ शय्या महार्हशय्या (कर्मधारय समास), तस्यां परिवर्तनम् महार्हशय्यापरिवर्तनम् (सप्तमी तत्पुरुष), तेन च्युतानि महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतानि (तृतीया तत्पुरुष समास), स्वकेशपुष्पैः= स्वे च ते केशाः (कर्मधारय समास) तेषां पुष्पाणि तैः (षष्ठी तत्पुरुष समास), दूयते= दूङ, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, निषेदुषी= नि+सद्+क्वसु+ ङीप्।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** विषम, रुपक।

**छन्द-** वंशस्थ।

**पुनर्ग्रहीतुं नियमस्थया तया, द्वयेऽपि निक्षेप इवार्पितं द्वयम्।**

**लतासु तन्वीषु विलासचेष्टितं विलोलदृष्टं हरिणाङ्गनासु च ॥१३॥**

**प्रसंग-** तपस्विनी का जीवन व्यतीत करते हुए पार्वती ने विलासयुक्त चेष्टाओं का त्याग कर दिया।

**अनुवाद-** (तपस्या के) नियमों का पालन करने वाली उसके द्वारा (पार्वती के द्वारा) लताओ और हरिणियों-इन दोनो के पास पुनः वापिस लेने के किये (क्रमशः)- अपनी सविलास चेष्टाओं को तथा अपनी चंचल दृष्टि को धरोहर के रूप में रख दिया गया।

**भावार्थ-** ऐसा प्रतीत होता था वह अपनी तपस्या को पूर्णतया सार्थक बनाना चाहती थी, अतः एक तपस्विनी का जीवन व्यतीत करने के लिये उसने अपने विलासयुक्त चेष्टाओं तथा अपने चंचल दृष्टि वाली सुन्दर नेत्रों को कुछ समय के लिये लताओं तथा हरिणियों को दे दिया था, तभी तो ऐसी विलासपूर्ण चेष्टाएं केवल कोमल लताओं एवं मृगों मे देखने को मिलती थीं।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** पुनर्ग्रहीतुम्= पुनः+ ग्रहीतुम्, द्व्येऽपि= द्व्ये+अपि, नियमस्थया= नियमे तिष्ठतीति नियमस्था तया (उपपद तत्पुरुष समास), विलोलदृष्टम्= विलोलं च तद् दृष्टम् (कर्मधारय समास), हरिणाङगनासु= हरिणानाम् अङ्गनाः हरिणाङ्गनाः तासु (षष्ठी तत्पुरुष समास), नियमस्थया- नियम+स्था +क, स्त्रीलिङ, तृतीया विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** उत्प्रेक्षा।

**छन्द-** वंशस्थ।

**अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान्घटस्तनप्रस्त्रवणैर्व्यवर्धयत्।**

**गुहोऽपि येषां प्रथमाप्तजन्मनां, न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति ॥१४॥**

**प्रसंग-** तपोवन में पार्वती ने अपने आस-पास के पौधो का भी देखभाल करना प्रारम्भ कर दिया।

**अनुवाद-** आलस्य से रहित उसने (पार्वती ने) घडेरूपी स्तनों की धाराओं से स्वयं ही वृक्षों को बढाया। कार्तिकेय भी (स्वयं से) पूर्व जन्म लेने वाले जिनके प्रति अर्थात् पार्वती के पुत्र-वात्सल्य को दूर नही कर सकेगा।

**भावार्थ-** कुमारी पार्वती माता की तरह प्रेमभाव से वहां के लताओं का अपने घटरुपी स्तनों से प्रसृत जल रूपी दुध से सिंचन किया करती थीं। अतः एकप्रकार से यह पार्वती के भविष्य में होने वाले पुत्र कार्तिकेय के पूर्वज ही हो गये थे, कार्तिकेय के जन्म के पहले ही माता पार्वती ने इनका बीजरोपण तथा सिंचन करके इनका सन्तानवत् लालन-पालन करना प्रारम्भ कर दिया था।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्धयत्= घटस्तनप्रवस्रवणैः+व्यवर्धयत् (सन्धि), गुहोऽपि= गुहः+अपि (सन्धि), अतन्द्रिता= न तन्द्रिता (नञ् समास), घटस्तनप्रस्रवणैः= घटौ स्तनो इव इति घटस्तनौ (कर्मधारय समास), तयोः प्रस्रवणैः (षष्ठी तत्पुरुष समास), पुत्रवात्सल्यम्= पुत्रस्य वात्सल्यम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), अतन्द्रिता= नञ्+तन्द्रा+इतच्+टाप्, स्त्री, प्रथमा विभक्ति,एकवचन, अपाकरिष्यति= अप+आ+ कृ, लृट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** रूपक

**छन्द-**वंशस्थ

**अरण्यबीजाञ्जलिदानलालितास्तथा च तस्यां हरिणा विशश्वसुः।**
**यथा तदीयैर्नयनैः कुतूहलात्पुरः सखीनाममिमीत लोचने ॥१५॥**

**प्रसंग-** अपने आस-पास रहने वाले मृगों का भी वह भली-भाति ख्याल रखती थी, और उनके साथ खेलती भी थी।

**अनुवाद-** अंजलि भरकर अरण्यबीज अर्थात् नीवार देने से अर्थात् खिलाने से पालित मृग उसपर इतना विश्वास करते थे जिससे कि (वह) कौतुहल के कारण उन मृगों के नेत्रो से अपने नेत्रों को (अपनी) सखियों के आगे नापती थी।

**भावार्थ-** जैसे एक सन्तान अपनी माता के साथ बिना किसी भय के रहता था, वैसे ही ये मृग भी पार्वती के साथ रहते थे। उसपर पूर्णतया विश्वास करते थे। वह पार्वती के हाथों से ही निवार ग्रहण करते थे। और जब कभी चपलतावश पार्वती अपनी सखीयों के सामने उन मृगों को पकडकर उनके सुन्दर नेत्रों से अपने नेत्रों का मिलान करती थी, नापन करती थी, तो भी वे मृग भागते नही थे। जैसे कि एक पुत्र या पुत्री किसी भी अवस्था में अपनी माता से अलग नही होते थे।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-**

अरण्यबीजाञ्जलिदानलालितास्तथा=अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः+ तथा, तदीयर्नयनैः= तदीयैः+ नयनैः, अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिता:= अरण्यस्य बीजानि अरण्यबीजानि (षष्ठी तत्पुरुष समास), तेषाम् अञ्जलयः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तेषां दानम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), तेन लालिताः (तृतीया तत्पुरुष समास), विशश्वसुः= वि+श्वस्, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन, अमिमीत= माङ्, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार।

**छन्द-** वंशस्थ।

**कृताभिषेकां हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासङ्गवतीमधीतिनीम्।**
**दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागमन्नधर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते॥१६॥**

**प्रसंग-** पार्वती की कठोर तपस्या को देखकर तपस्वीजन के हृदय में पार्वती के लिये सम्मान बढता जा रहा था। सम्मान के कारण उसके दर्शन करने के लिये तपोवन में आने लगे।

**अनुवाद-** स्नान कर चुकने वाली को, अग्नि में आहुति देने वाली को, वल्कल का उत्तरीय धारण करने वाली को, वेद-पाठ करने वाली उस पार्वती को देखने के इच्छुक ऋषिगण पास आते थे तपस्वीजनों में अवस्था अर्थात् आयु नही देखी जाती है।

**भावार्थ-** इसप्रकार पार्वती अपने प्रतिज्ञा पर अडिग रहते हुए तपस्या करने लगी। प्रतिदिन नियमपूर्वक स्नान करना, अग्निहोत्र इत्यादि यज्ञ करना, वेद-पाठ इत्यादि करना पार्वती के दिनचर्या का अभिन्न अंग बन चुका था। उनके इस प्रतिज्ञा को देखकर उनसे आयु में वृद्ध तपस्वीजन प्रतिदिन उसके दर्शन करने के लिये आते थे। ऐसा हो भी क्यों न हो, क्युंकि आयु में वृद्ध होना एक महान तपस्वी का मापदण्ड नही हो सकता है। महान् तपस्वी होने के लिये आयु नही, बल्कि वैराग्य वृद्धत्व, ज्ञानवृद्धत्व, धर्मवृद्धत्व होना आवश्यक है, और पार्वती में तो ये तीनो ही गुण विद्यमान थे, इसीकारण आयु मे वृद्ध तपस्वी भी पार्वती का दर्शन करने के लिये आते थे।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-**

दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागमन्= दिदृक्षवः+ताम्+ऋषयः+अभ्युपागमन् (सन्धि), कृताभिषेकाम्= कृतः अभिषेकः यया सा ताम् (बहुब्रीही समास), हुतजातवेदसम्= जातं विदन्ति वेत्ति वा इति जातवेदाः (उपपद समास), हुतः जातवेदाः यया सा ताम् (बहुब्रीही समास), धर्मवृद्धेषु= धर्मेण वृद्धाः तेषु (तृतीया तत्पुरुष समास), अधीतिनीम्= अधि+इङ् +क्त+इनि+डीप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, अभ्युपागमन्= अभि+उप+आ+गम्, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** काव्यलिङ् अलंकार, परिकर।

**छन्द-**वंशस्थ।

सूक्ति- धर्मवृद्धेषु वयः न समीक्ष्यते- अर्थात् धर्म में वृद्ध लोगों की आयु नही देखी जाती है। अतः आयु मे वृद्ध होना महत्व नही रखता है, बल्कि ज्ञानी, धर्म का आचरण ही महत्वपूर्ण होता है।

**विरोधिसत्वोज्झितपूर्वमत्सरं, दुमैरभीष्टप्रसवार्चितातिथि**

**नवोटजाभ्यन्तरसंभृतानलं, तपोवनं तच्च बभूव पावनम्॥१७॥**

**प्रसंग-**पार्वती के सानिध्य में रहकर तपोवन में रहने वाले वन्यजीव पशु-पक्षियों का आचरण भी पवित्र हो गया था।

**अनुवाद-** विरोधी प्राणियों के द्वारा छोड दिया गया है पहले का द्वेष जिसमे, द्रुमों अर्थात् वृक्षों ने अभीष्ट फलों से सत्कार किया गया है, अतिथियों का जिसमें, नवीन निर्मित पर्णशालाओं के अन्दर संचित है अग्नि जिसमें, (ऐसा) वह तपोवन पवित्र हो गया है।

**भावार्थ-** इसप्रकार वैराग्य, धर्म और ज्ञान में वृद्ध पार्वती के सानिध्य से आस-पास रहने वाले वृक्ष, पशु, पक्षियों के आचरण में भी परिवर्तन होने लगा था। ऐसे प्राणी जो स्वभाव से अन्य जीव-जन्तुओं के साथ द्वेष रखते थे, उन्होने अपने द्वेष का त्याग कर दिया था। वृक्ष भी भली-भाति फल प्रदान करने लगे थे,जिससे अतिथि को पर्याप्त मात्रा में स्वादिष्ट भोजन प्राप्त होने लगा था। पर्णशालाओं मे भी निरन्तर यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित रहने लगी थी। इसप्रकार पूरा वातावरण ही पवित्र हो गया था।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** तच्च= तत्+च (सन्धि), विरोधिसत्वोज्झितपूर्वमत्सरं= पूर्वः मत्सरः पूर्वमत्सरः (कर्मधारय समास), विरोधिनश्च ते सत्त्वाः विरोधिसत्त्वाः (कर्मधारय समास) तैः उज्झितः पूर्वमत्सरः यस्मिन् तत् (बहुब्रीही समास), अभीष्टप्रसवार्चितातिथि= अभीष्टैः प्रसवः अर्चिताः अतिथयः यस्मिन् तत् (बहुब्रीही समास), नवोटजाभ्यन्तरसंभृतानलम्= नवानाम् उटजानाम् अभ्यन्तरे संभृताः अनलाः यस्मिन् तत् (बहुब्रीही समास), तपोवनम्= तपसः वनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास)।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**परिकर।

**छन्द-** वंशस्थ।

**यदा फलं पूर्वतपःसमाधिना, न तावता लभ्यममंस्त काङ्क्षितम्।**

**तदानपेक्ष्यं स्वशरीरमार्दवं, तपो महत्सा चरितुं प्रचक्रमे॥१८॥**

**प्रसंग-** तपस्या करते रहने पर भी जब पार्वती को शिव की प्राप्ति नही हुई, तो उन्होने अपनी तपस्या का रूप और अधिक कठोर कर लिया।

**अनुवाद-** उसने (पार्वती ने) जब उतने मात्र से पूर्वोक्त तप समाधि के द्वारा आकांक्षित फल (शिवप्राप्तिरूप फल) को प्राप्त करने योग्य नही माना, तब अपने शरीर के मार्दव अर्थात् कोमलता को ध्यान न देते हुए (और अधिक) महान् अर्थात् कठिन तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया।

**भावार्थ-** इसप्रकार पार्वती सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ तपस्या करने लगी। लेकिन इतनी तपस्या करने के बाद भी जब तपस्या का शिवप्राप्तिरुप फल उन्हे प्राप्त नही हो पा रहा था, तो निराशाको प्राप्त न होकर पार्वती का निश्चय और ढ़ढ हो गया। ऐसी स्थिति में उन्होने अपने कोमल शरीर की क्षमता को ध्यान न देकर और अधिक कठिन तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** लभ्यममंस्त= लभ्यम्+अमंस्त, पूर्वतपः समाधिना= तपसः समाधिः इति तपः समाधिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), पूर्वश्चासौ तपः समाधिः तेन (कर्मधारय समास), स्वशरीरमार्दवम्= सवस्य शरीरम् इति स्वशरीरम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्य मार्दवम् (षष्ठी तत्पुरुष),

अनपेक्ष्य= नञ्+अप्+ईक्ष्+ल्यप्, चरितुम्= चर्+ तुमुन्।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** काव्यलिङ्।

**छन्द-** वंशस्थ।

**क्लमं ययौ कन्दुकलीलयापि या, तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यत।**

**ध्रुवं वपुः काञ्चनपद्मनिर्मितं, मृदु प्रकृत्या च ससारमेव च॥१९॥**

**प्रसंग-** पार्वती का शरीर स्वर्ण और कमल के समान कोमल है, और कठोर भी है, इसीकारण इन्होने मुनियों के चरित्र का पालन किया।

**अनुवाद-** जो (पार्वती) कन्दुकक्रीडा से भी क्लान्त हो जाती थी, उसने मुनियों के चरित का अवगाहन किया। निश्चय ही (इसका) शरीर काञ्चन अर्थात् स्वर्ण और कमल से बना हुआ था, (अतः) स्वभाव से ही (कमल के समान) मृदु और (स्वर्ण के समान) कठोर था।

**भावार्थ-** महल में निवास करने पर जहां पार्वती का शरीर अत्यन्त कोमल था, और कंदुक की क्रीडा से भी क्लान्त हो जाता था। वही उसका शरीर तपस्या करते करते अत्यधिक कठोर हो गया था। प्रतीत होता है कि पार्वती का शरीर स्वर्ण के समान कठोर और कमल के समान कोमल था, दोनो ही था।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** कन्दुकलीलयापि= कन्दुकलीलया+अपि, कन्दुकलीलया= कन्दुकस्य लीला (षष्ठी तत्पुरुष समास), काञ्चनपद्मनिर्मितम्= काञ्चनं च पद्म च काञ्चनपद्मे (द्वन्द समास), ताभ्यां निर्मितम् (तृतीया तत्पुरुष समास), प्रकृत्या= प्र+कृ+क्तिन्, तृतीया विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**उत्प्रेक्षा।

**छन्द-**वंशस्थ।

**शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां, शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा।**
**विजित्य नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभामनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षत ॥२०॥**

**प्रसंग-** पार्वती तपस्या करने के समय चतुर्दिक अग्नि की प्रज्वलित धारा के मध्य में स्थित होकर सूर्य की उपासना करती थी।

**अनुवाद-** ग्रीष्मकाल में निर्मल मुस्कान वाली, सुन्दर मध्य भाग वाली (पार्वती) प्रज्वलित चारों अग्निओं के मध्य स्थित होकर, नेत्रप्रतिघातिनि (सूर्य की) प्रभा को जीतकर निरन्तर एक दृष्टि से देखती थी।

**भावार्थ-** ग्रीष्मकाल में भी पार्वती जब तपस्या करती थी, वह प्रसन्न रहती थी, तथा सदैव प्रसन्नभाव से रहती थी। ऐसे ग्रीष्म काल में अग्नि के समीप जाना भी सामान्य जन के लिये कठिन होता था, वैसे भीष्म ग्रीष्मकाल में भी पार्वती अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक चतुर्दिक् यज्ञाग्नि की स्थापना करके उनके बीच में रहकर पंचम सूर्यदेव रुप अग्नि की उपासना करती थीं, तथा बिना नेत्रों को झपकाये निरन्तर एकटक दृष्टि से सूर्य को देखते हुए श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा किया करती थी।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** हविर्भुजाम्= हविः भुञ्जन्ते इति हविर्भुजः तेषाम् (उपपद तत्पुरुष समास), शुचिस्मिता= शुचि स्मितां यस्याः सा (बहुब्रीही समास), नेत्रप्रतिघातिनीम्= नेत्रयोः प्रतिघातिनी ताम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), अनन्यदृष्टिम्= न अन्यस्मिन् दृष्टिः यस्या सा (बहुब्रीही समास), हविर्भुजाम्=हविस्+भुज् क्विप्, षष्ठी विभक्ति, बहुवचन, प्रतिघातिनीम्= प्रति+हन् +णिनि+ङीप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** परिकर।

**छन्द-** वंशस्थ।

**तथातितप्तं सवितुर्गभस्तिभिर्मुखं तदीयं कमलश्रियं दधौ।**
**अपाङ्गयोः केवलमस्य दीर्घयोः, शनैः शनैः श्यामिकया कृतं पदम् ॥२१॥**

**प्रसंग-**

**अनुवाद-** उसप्रकार से सूर्य की किरणों के द्वारा अत्यन्त तपे हुए उसके मुख ने कमल की शोभा को धारण कर लिया। केवल इसकी विस्तृत नेत्र-प्रान्तों के कोने में धीरे-धीरे श्यामलता ने स्थान प्राप्त कर लिया।

**भावार्थ-** इसप्रकार सूर्योपासना करते रहने से मलिन न होकर उनका मुख और अधिक देदीप्यमान हो गया था।अतः ऐसा तपा हुआ उनका मुखकमल और अधिक शोभा को धारण कर चुका था। केवल पार्वती के नेत्र-प्रान्त श्यामलता को प्राप्त हो गये थे। लेकिन श्यामल होने के बावजूद भी पार्वती का सौन्दर्य धूमिल नही, बल्कि और अधिक निखर गया था।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** तथातितप्तम्= तथा+अतितप्तम् (सन्धि), सवितुर्गभस्तिभिर्मुखम्= सवितुः+गभस्तिभिः+मुखम् (सन्धि), अतितप्तम्= अत्यन्तं तप्तम् इति (सुप्सुपा समास), कमलश्रियम्= कमलस्य श्रीः ताम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), श्यामिकया= श्याम+कन्+टाप्, तृतीया विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**छन्द-** वंशस्थ।

**अयाचितोपस्थितमम्बु केवलं, रसात्मकस्योडुपतेश्च रश्मयः।**

**बभूव तस्याः किल पारणाविधिर्न वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः ॥२२॥**

**प्रसंग-** पार्वती बिना जल और बिना आहार के ही जीवन-यापन कर थीं। वह पूर्णतया अपने जीवन के लिये प्रकृति पर ही निर्भर थीं।

**अनुवाद-** केवल बिना मांगे प्राप्त जल और रसमय चन्द्रमा की किरणें उस (पार्वती) का व्रतान्त भॊजन वृक्षों की वृत्ति से अतिरिक्त नही हुआ।

**भावार्थ-** ग्रीष्मकाल में तपस्या मे कठॊर नियमों का पालन करने वाली पार्वती ने सम्पूर्णतया शारीरिक और मानसिक रुप से शिवप्राप्ति में अपना सबकुछ समर्पित कर दिया था, अतः उसने भोजन और जल दोनो का पूर्णतया त्याग कर दिया था। ऐसी स्थिति में प्रकृति ही उसके जीवन का माध्यम बनी थी। अतः बिना मांगे हुए जल और अमृतमय चन्द्रमा की किरणॊं ही उसका आहार थीं। अतः जिसप्रकार वृक्ष के लिये अयाचित जल और चन्द्रमा की किरणें ही उसका जीवन होती है, उसीप्रकार, पार्वती के लिये भी अप्रार्थित जल तथा चन्द्रमा की किरणें ही जीवन का साधन थी।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** रसात्मकस्योडुपतेश्च= रसात्मकस्य+उडुपतेः+च (सन्धि), अयाचितोपस्थितम्= न याचितम् इति अयाचितम् (नञ् समास), अयाचितं च तत् उपस्थितम् (कर्मधारय समास), रसात्मकस्य= रसः आत्मा यस्य सः तस्य (बहुब्रीही समास), वृक्षवृत्तिव्यतिरिक्तसाधनः= वृक्षाणां वृत्तिः इति वृक्षवृत्तिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), वृक्षवृत्तेः व्यतिरिक्तं साधनं यस्य सः (बहुब्रीही समास), अयाचित= नञ्+ याच्+क्त, उपस्थितम्=उप+स्था+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, साधनः=साध् +ल्युट्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार -** परिसंख्या।

**छन्द -** वंशस्थ।

**निकामतप्ता विविधेन वह्निना, नभश्चरेणन्धनसंभृतेन सा।**

**तपात्यये वारिभिरुक्षिता नवैर्भुवा सहोष्माणमञ्चदूर्ध्वगम् ॥२३॥**

**प्रसंग-** वर्षा ऋतु में निराजल रहने के कारण पार्वती के शरीर पर वर्षा की बूंदे पडने पर पार्वती के शरीर से गर्म-गर्म वाष्प उडने लगी।

**अनुवाद-** आकाशगामी, इन्धन से प्रज्वलित, विविध प्रकार की अग्नि से अत्यन्त सन्तप्त हुई वह (पार्वती) ग्रीष्म ऋतु की समाप्ति पर अर्थात् वर्षारम्भ काल में वर्षा के नवीन जल से सिञ्चित पृथ्वी के साथ ऊपर की ओर जाने वाली वाष्प को छोडने लगी।

**भावार्थ-** इसप्रकार जैसे ग्रीष्मऋतु की समाप्ति होने के समय पृथ्वी अत्यन्त तप्त रहती है, और आकाश से होने वाली वर्षा की पहली बूंदे उसपर गिरती है, और वर्षा की बूंदे गिरते ही तप्त भूमि से तुरन्त ही वाष्प निकलने लगती है, उसीप्रकार निराजल पार्वती के बिना जल से सूखे हुए शरीर पर जैसे ही वर्षा की जल गिरता है, वैसे ही वाष्प उनके शरीर से निकलना प्रारम्भ कर हो जाता है।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** नभश्चरेणेन्धनसम्भृतेन= नभश्चरेण+इन्धनसम्भृतेन, वारिभिरुक्षिता=वारिभिः+उक्षिता, नवैर्भुवा=नवैः+भुवा, सहोष्माणममुञ्चदूर्ध्वगम्= सह+ऊष्माणम्+मुञ्चत्+ऊर्ध्वगम्, नभश्चरेण= नभसि चरतीति नभश्चरः तेन (सप्तमी तत्पुरुष समास), इन्धनसम्भृतेन= इन्धनैः सम्भृतः तेन (तृतीया विभक्ति), तपात्यये= तपस्य अत्ययः इति तपात्ययः तस्मिन् (षष्ठी तत्पुरुष समास), नभश्चरेण= नभस्+चर्+ट, तृतीया विभक्ति, एकवचन, उक्षिता= उक्ष +इट्+क्त, प्रथमा विभक्ति,एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार -** सहोक्ति।

**छन्द -** वंशस्थ।

**स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः, पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः।**

**वलीषु तस्याः स्खलिता प्रपेदिरे, चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः ॥२४॥**

**प्रसंग-** वर्षा की बूंदो ने उसके पूरे शरीर को भिगो दिया।

**अनुवाद-** वर्षा की पहली बूंदे उस (पार्वती) की पलकों में क्षणमात्र के लिये ठहरीं, अधरों को ताडित किया, पयोधरों के उन्नत अग्रभाग पर टकराने से चूर-चूर हुई, उदररेखाओं पर गिरीं और बहुत देर से नाभि में प्रविष्ट होती थी।

**भावार्थ-** वर्षा ऋतु में भी पार्वती खुले आसमान के नीचे ही तपस्या करती थी। और वर्षा ऋतु की बूंदे उसके नेत्रों के पलको पर गिरते हुए अधरों पर गिरती थीं। वहां से नीचे पयोधरों पर टकराकर छिन्न-भिन्न हो जाती थी। और अन्त में उदर से नीचे जाते हुए नाभि में प्रवेश कर जाती थी।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** प्रथमोबिन्दवः= उदकस्य बिन्दवः इति उदबिन्दवः (षष्ठी तत्पुरुष समास), प्रथमे च ते उदबिन्दवः (कर्मधारय समास), ताडिताधराः=ताडितः अधरः यैः ते (बहुब्रीही समास), पयोधरोत्सेतसेधनिपातचूर्णिताः=पयोधरयोः उत्सेधः इति पयोधरोत्सेधः (षष्ठी तत्पुरुष समास), पयोधरोत्सेधे निपातेन चूर्णिताः (सप्तमी तत्पुरुष, तृतीया तत्पुरुष समास), स्खलिताः= स्खल्+क्त, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन, प्रपेदिरे= प्र+पद् +लिट् लकार+प्रथम पुरुष, बहुवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** परिकर।

**छन्द-** वंशस्थ।

**शिलाशयां तामनिकेतवासिनीं, निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु।**

**व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयैर्महातपः साक्ष्य इव स्थिताः क्षपाः ॥२५॥**

**प्रसंग-** वर्षा ऋतु में पार्वती की तपस्या की साक्षी बिजली से चमकती हुई रात्रियां बनी।

**अनुवाद-** निरन्तर (बहती हुई) वायु के मध्य में होने वाली वर्षा में बिना घर के रहने वाली, शिला पर शयन करने वाली उस (पार्वती) को महान तपस्या की साक्षीरुप में स्थित रात्रियां बिजली रूपी आखें के द्वारा मानो देखा करती थीं।

**भावार्थ-** इस वर्षा ऋतु में वायु का तीव्र प्रवाह चलता रहता था। वर्षा भी निरन्तर होती रहती थी। और ऐसे प्रतिकूल मौसम में भी पार्वती पूरी रात्रि भिगते हुए बाहर ही शिला पर शयन करती थी। ऐसे

समय में इस महान् तपस्या की साक्षी अनेक रात्रियां थी। ऐसा लगता था कि जैसे भयंकर बिजलियां ही रात्रि की नेत्र बनकर पार्वती के कठोर व्रत की साक्षी का कार्य करती थी।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु= निरन्तरासु+अन्तरवातवृष्टिषु (सन्धि), व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडितन्मयैर्महातपः = व्यलोकयन्+उन्मिषितैः+तडिन्मयैः+महातपः, अन्तरवातवृष्टिषु=अन्तरे वातः यासां ताः इति अन्तरवाताः (बहुब्रीही समास), अन्तरवाताः च ताः वृष्टयः तासु (कर्मधारयसमास), अनिकेतवासिनीम्= निकेते वसतीति निकेतवासिनी (उपपद समास), न निकेतवासिनी ताम् (नञ् तत्पुरुष समास), शिलाशयाम्= शिलायाम् शेते इति शिलाशया ताम् (उपपद समास), अनिकेतवासिनीम्= नञ्+नि+कित्+अच्+वस्+णिनि+डीप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, उन्मिषितैः= उत्+मिष् +क्त, तृतीया विभक्ति, बहुवचन, व्यलोकयन्=वि+लोक्, लङ लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**उत्प्रेक्षा।

**छन्द-**वंशस्थ।

**निनाय सात्यन्तहिमोत्किरानिलाः, सहस्यरात्रीरुदवासतत्परा।**

**परस्पराक्रन्दिनि चक्रवाकयोः, पुरो वियुक्ते मिथुने कृपावती।।२६।।**

**प्रसंग-** जब वह पौष मास की रात्रि मे भी वह उपासना करती थी, तो एक-दूसरे से वियुक्त हुए चकवा-चकवी के जोडे पर भी उसे दया आती थी।

**अनुवाद-** वह (पार्वती) अत्यधिक हिमवर्षा करने वाली वायु से युक्त,पौष मास की रात्रियों को, जल में खडी होकर, एकदूसरे को पुकारते हुए (अपने) सामने एकदूसरे से वियुक्त हुए चकवा और चकवी के जोडे पर कृपा दिखलाती हुई व्यतीत करती थी।

**भावार्थ-** वर्षाऋतु के पश्चात् शीतकाल में भी पार्वती के कठोर व्रत के पालन में कोई न्युनता नही आयी। अन्य बीते हुए ऋतुओं के समान शीतकाल में भी, पौष मास की रात्रियों मे भी जब हिमवर्षा होती थी, उस अत्यन्त असहनीय रात्रि में भी पार्वती शीतल जल में खडे होकर पूजा करती थी। इसप्रकार तपस्या करते रहने से दिनोदिन पार्वती में करुणभाव की भी वृद्धि होती जा रही थी। अतः रात्रि काल में अलग हुए चकवा-चकवी का क्रन्दन सुनकर उसका हृदय और अधिक द्रवित हो जाता था।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** सात्यन्तहिमोत्किरानिलाः=सा+अत्यन्तहिमोत्किरानिलाः (सन्धि), सहस्यरात्रीरुदवासतत्परा= सहस्यरात्रीः+ उदवासतत्परा (सन्धि), अत्यन्तहिमोत्किरानिलाः= उत् किरन्तीति उत्किराः (उपपद समास), हिमानाम् उत्किराः हिमोत्किराः (षष्ठी तत्पुरुष समास), अत्यन्तं हिमोत्किराः अनिलाः यासु ताः (बहुब्रीही समास), सहस्यरात्रीः= सहस्यस्य रात्रयः इति सहस्यरात्रयः (षष्ठी तत्पुरुष समास), चक्रवाकयोः= चक्रवाकी च चक्रवाकश्च इति चक्रवाकौ तयोः (द्वन्द समास), कृपावती= कृपा+वतुप्+डीप्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, निनाय= नी, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार**-परिकर।

**छन्द**-वंशस्थ।

**मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि, प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना।**

**तुषारवृष्टिक्षतपद्मसम्पदां, सरोजसन्धानमिवाकरोदपाम्॥२७॥**

**प्रसंग**- शीतऋतु में सरोवर के कमल के नष्ट हो जाने पर भी पार्वती स्वयं कमलरूप में उस सरोवर की शोभा बढाती थी।

**अनुवाद**- उस (पार्वती ने) रात्रि में पद्म के समान सुगन्धित कापते हुए पत्ररूपी अधरोष्ठ से सुशोभित मुख से, हिम की वर्षा से नष्ट हुई कमल रूपी सम्पत्ति वाले जलों मे मानो कमल सम्बन्ध सा स्थापित कर दिया था।

**भावार्थ**- शीत के आधिक्य में जब कमल रूपी मुख वाली पार्वती रात्रि में पूजा-अचर्न करती थी, तो उस सुगन्धित मुखकमल वाली पार्वती के ऑष्ठ कमल के पत्रों के समान कापते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि मानो हेमन्त ऋतु में कमलों के नष्ट हो जाने पर नीरस उस सरोवर की शोभा पार्वती के मुख रूपी कमल से ही बढती थी। अतः यहां उत्प्रेक्षा है कि मानो पार्वती ने अपने मुख से उस सरोवर की शोभा को परिपूर्ण कर दिया था।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी**-

सरोजसन्धानमिवाकरोदपाम्= सरोजसन्धानम्+इव+अकरोत्+अपाम्, पद्मसुगन्धिना=शोभनः गन्धः यस्य तत् सुगन्धि (बहुब्रीही समास), पद्ममिव सुगन्धिः इति पद्मसुगन्धिः तेन (उपमित तत्पुरुष समास), सरोजसन्धानम्=सरसि जातानि इति सरोजानि (सप्तमी तत्पुरुष समास), सरोजानां सन्धानम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), सन्धानम्= सम्+धा +ल्युट्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय**-

**अलंकार**- उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक।

**छन्द**- वंशस्थ।

**स्वयंविशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता, परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः।**

**तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां, वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः॥२८॥**

**प्रसंग**- पार्वती ने तपस्या की पराकाष्ठा को भी पार कर लिया था। अतः उसने पत्तों को भी भोजन रुप में ग्रहण करना छोड दिया था।

**अनुवाद**- अपने आप गिरे हुए वृक्षों के पत्तो से जीविका चलाना ही निश्चित रूप से तपस्या की पराकाष्ठा होती है, परन्तु उस (पार्वती) ने तो वह भी छोड दिया। इसीलिये पुराविदों ने उसको अपर्णा इस नाम से पुकारते हैं।

**भावार्थ**- एक साधक के लिये वृक्ष से अपने-आप गिरे हुए पत्तों को भोजन के रुप में ग्रहण करना उसकी तपस्या की पराकाष्ठा का लक्षण है, कितुं यहां तो पार्वती ने उसका भी त्याग कर दिया था। वह अपने-आप से भूमि पर गिरे हुए पत्तों को भी भोजन रूप में ग्रहण नही करती थी। अतः पार्वती के इसप्रकार पत्तों को भी भोजन रूप मे ग्रहण न करने से विद्वानों द्वारा पार्वती को एक नवीन नाम 'अपर्णा' दिया गया, जिसका तात्पर्य है- पर्णों का भक्षण न करने वाली।

**व्याकरण सम्बन्धि टिप्पणी-** तपसस्तया= तपसः+तया (सन्धि), तदप्यपाकीर्णमतः= तत्+अपि+अपाकीर्णम्+अतः (सन्धि), वदन्त्यपर्णेति=वन्दति+अपर्णा+इति (सन्धि), स्वंयविशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता=द्रुमानां पर्णानि इति द्रुमपर्णानि (षष्ठी तत्पुरुष समास), स्वयं विशीर्णानि द्रुमपर्णानि इति स्वयंविशीर्णद्रुमपर्णानि (कर्मधारय समास), तानि वृत्तिः यस्य सः तस्य भावः (बहुव्रीही समास), प्रियवदाम्= प्रियं वदतीति प्रियंवदा ताम्(उपपद तत्पुरुष समास), पुराविदः= पुरा विदन्ति इति पुराविद् (उपपद समास), अपर्णा= न पर्णानि यस्याः सा (बहुव्रीही समास), अपाकीर्णम्= अप+आ+ कृ +क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, प्रियवदाम्=प्रिय+विद्+खच्+ टाप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** काव्यलिंग।

**छन्द-**वंशस्थ।

**मृणालिकापेलवमेवमादिभिर्व्रतैः स्वमङ्गं ग्लपयन्त्यहर्निशम्।**

**तपः शरीरैः कठिनरुपार्जितं, तपस्विनां दूरमधश्चकार सा।।२९।।**

**प्रसंग-** तपस्या करते करते पार्वती का शरीर इतना कठोर हो गया था कि अन्य तपस्वी उसके आगे गौण हो गये थे।

**अनुवाद-**कमलिनीकन्दवत् कोमल अपने शरीर को इसप्रकार के (कठोर) नियमों से दिन-रात क्षीण बनाती हुई उस पार्वती ने कठोर शरीर से उपार्जित तपस्वियों की तपस्या को अत्यन्त तिरस्कृत कर दिया।

**भावार्थ-** इसप्रकार बिना जल, बिना आहार के पार्वती अपना जीवन का संचालन कर रही थी। ग्रीष्म, वर्षा, शीत-इन ऋतुऒं के प्रतिकूल प्रभाव को झेलते हुए भी अत्यन्त प्रसन्न मन से खुले आसमान के नीचे दिन-रात्रि तपस्या के कठोर से कठोर नियमों का पालन करती रहती थी। अतः पार्वती का शरीर इतना सशक्त हो चुका था कि वह किसी भी स्थिति में अपने कर्तव्य से विचलित नही होती थी। अतः उसकी महान तपस्या के आगे अन्य तपस्वी नतमस्तक हो चुके थे। वह संसार की महानतम तपस्विनी बन चुकी थी।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** ग्लपयन्त्यहर्निशम्=ग्लपयन्ती+अहर्निशम् (सन्धि), कठिनैरुपार्जितम्=कठिनैः+उपार्जितम्, मृणालिकापेलवम्= मृणालिका इव पेलवम् (कर्मधारय समास), एवमादिभिः=एवम् आदिः येषां तानि इति एवमादीनि तैः (बहुव्रीही समास), अहर्निशम्= अहश्च निशा च (द्वन्द्व समास), तपस्विनाम्= तपः अस्ति येषां ते इति तपस्विनः तेषाम् (बहुव्रीही समास), ग्लपयन्ती= ग्लै+णिच्+शतृ+डीप्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, अधश्चकार= अधः+कृ, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** व्यतिरेक।

**छन्द-**वंशस्थ।

**अथाजिनाषाढधरः प्रगल्भवाग्, ज्वलन्निव ब्रह्मयेन तेजसा।**

**विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं, शरीरबद्धः प्रथमाश्रयो यथा ॥३०॥**

**प्रसंग-** पार्वती की इस तपस्या से प्रभावित होकर स्वयं शिव अपना रुप बदलकर ब्रह्मचारी के रुप में पार्वती की परीक्षा लेने आये।

**अनुवाद-** इसके बाद (पार्वती द्वारा अत्यन्त कठोर तपस्या करने के बाद) कृष्ण मृगचर्म और पलाश दण्ड धारण करने वाला, गम्भीर अर्थात् प्रौढ एवं निर्भीक वाणी बोलने वाला, ब्रह्ममय तेज से देदीप्यमान सा कोई जटाधारी ने जैसे कि वह शरीरधारी ब्रह्मचर्य आश्रम ही हो, तपोवन में प्रवेश किया।

**भावार्थ-** पार्वती की ऐसी महान तपस्या अब फलीभूत होने को आयी थी। तभी तो भगवान् शिव स्वयं ही उसकी अन्तिम परीक्षा लेने के लिये एक जटाधारी, दण्डधारी एक तपस्वी का रूप ग्रहण करके तपस्या कर रही पार्वती से भेट करने के लिये आये। तपस्वी के रूप में उन्होने कृष्ण मृगचर्म , पलाश का दण्ड धारण कर रखा था। उनकी जटाएं अत्यन्त घनी एवं लम्बी थीं। उनकी वाणी अत्यन्त ही गम्भीर एवं निर्भीक थी। उनका मुख ब्रह्ममय तेज से देदीप्यमान था। अतः ब्रह्मचर्य आश्रम के अनुकूल ही उन्होने अपना आचरण कर रखा था। इसप्रकार एक महान तेजस्वी ब्रह्मचारी का रूप लेकर तपोवन में उन्होने प्रवेश किया।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** अथाजिनाषाढधरः= अथ+अजिनाषाढधरः, ज्वलन्निव=ज्वलन्+इव, कश्चिज्जटिलस्तपोवनम्= कश्चित्+जटिलः+तपोवनम्, अजिनाषाढधरः= अजिनं च आषाढश्च इति अजिनाषाढौ (द्वन्द्व समास), तयो धरः (षष्ठी तत्पुरुष समास), प्रगल्भवाक्= प्रगल्भा वाक् यस्य सः (बहुब्रीही समास), जटिलः= जटाः सन्ति यस्य सः (बहुब्रीही समास), प्रथमाश्रमः= प्रथमश्चासौ आश्रमः (कर्मधारय समास), तपोवनम्= तपसः वनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), ब्रह्ममयेन= ब्रह्ममयेन=ब्रह्म+मयट्+ तृतीया विभक्ति, एकवचन, विवेश=विश्, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** उत्प्रेक्षा।

**छन्द-**वंशस्थ।

**तमातिथेयी बहुमानपूर्वया, सपर्यया प्रत्युदियाय पार्वती।**

**भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां, वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः ॥३१॥**

**प्रसंग-** पार्वती ने शिव को नही पहचाना। और एक ब्रह्मचारी समझकर उनका अतिथि-सत्कार किया।

**अनुवाद-** अतिथिसत्कारपरायणा पार्वती ने उसका (ब्रह्मचारी का) अत्यधिक आदरपूर्वक सेवाभावना से स्वागत किया। समान भाव होने पर भी स्थित बुद्धि वालों की विशेष प्रकार के शरीरधारियों पर अतिगौरवशालिनि चेष्टाएं होती हैं।

**भावार्थ-** शिव के अपने रुप परिवर्तन के कारण पार्वती उनको पहचान नही पायी। और उनको एक महान तपस्वी के रुप में मानकर अतिथि-सत्कार के लिये उद्यत हुई। और अत्यन्त ही सेवाभाव से उस ब्रह्मचारी का सत्कार किया। क्योंकि एकाग्र भूमि मे रहते हुए तपस्वी सबके प्रति समान भाव रखते हैं और ऐसे समदर्शी व्यक्ति भी विशिष्ट जनों के प्रति विशिष्ट प्रकार से अतिथि सेवा करते हैं।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-**

साम्येऽपि= साम्ये+अपि (सन्धि), वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः=वपुर्विशेषेषु+अतिगौरवा (सन्धि), आतिथेयी- न विद्यमानः तिथिः यस्य सः (बहुब्रीही समास), बहुमानपूर्वया-बहुश्चासौ मानः इति बहुमानः (बहुब्रीही समास), बहुमानः पूर्वः यस्याः सा तया (बहुब्रीही समास), वपुर्विशेषेषु= वपुषां विशेषः इति वपुर्विशेषाः तेषु (षष्ठी तत्पुरूष समास), अतिगौरवा= अत्यन्तं गौरवं यासां ताः(बहुब्रीही समास), आतिथेयी=अतिथि+ढञ्+डीप्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, प्रत्युदियाय= प्रति+उत्+इ, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** अर्थान्तरन्यास ।

**छन्द-**वंशस्थ।

**विधिप्रयुक्तां परिगृह्य सत्क्रियां परिश्रमं नाम विनीय च क्षणम्।**
**उमां स पश्यन्नृजुनैव चक्षुषा, प्रचक्रमे वक्तुमनज्झितक्रमः ॥३२॥**

**प्रसंग-** कुछदेर तक विश्राम करने के पश्चात् ब्रह्मचारीरुप में शिव ने पार्वती से वार्तालाप करना प्रारम्भ किया।

**अनुवाद-** उसने (ब्रह्मचारी ने)विधिपूर्वक सम्पादित की गई पूजा को ग्रहण करके और कुछ देर थकावट को दूर करके उमा अर्थात् पार्वती को सरल दृष्टि से ही देखते हुए वाक्यविन्यास को न त्यागते हुए कहना प्रारम्भ किया।

**भावार्थ-** यद्यपि ब्रह्मचारी रूप में तो शिव ही थे, और उन्हे किसी भी प्रकार की थकावट नही होती थीं, किंतु फिर भी मनुष्य रूप धारण करने के कारण उन्होने मनुष्यवत् आचरण करने का अभिनय किया। अतः पहले तो उस शिवरूप ब्रहमचारी ने भी विनम्र भाव से पार्वती की अतिथि-सत्कार को स्वीकार किया। पार्वती ने भी पूर्णतया विधि का पालन करते हुए ब्रह्मचारी की सेवा की। इसके उपरान्त कुछ देर आराम करके अपनी थकावट दूर करने का अभिनय किया। और फिर अत्यन्त ही सरलता से पार्वती को देखते हुए प्रश्न पूछना आरम्भ किया।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** पश्यन्नृजुनैव= पश्यन्+ऋजुना+एव (सन्धि), विधिप्रयुक्ताम्= विधिना प्रयुक्ता इति विधिप्रयुक्ता ताम् (तृतीया तत्पुरुष समास), अनुज्झितक्रमः= न उज्झितः क्रमः येन सः (बहुब्रीही समास), प्रयुक्ताम्- प्र+युज् + क्त+ टाप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, परिगृह्य=परि+ग्रह्+ल्यप्, प्रचक्रमे- प्र+क्रम्, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** परिसंख्या ।

**छन्द-**वंशस्थ।

**अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते।**
**अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे, शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ॥३३॥**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारी ने पार्वती से तपस्या से सम्बन्धित कुशल-क्षेम पूछा।

**अनुवाद-** (ब्रह्मचारी ने प्रश्न किया कि) (होम-यज्ञादि) क्रियांओं के लिये समिधाएं एवं कुशा सुप्राप्य हैं क्या? जल तुम्हारे स्नानविधियोग्य हैं ? (क्या तुम) अपनी शक्ति के अनुसार तपस्या में प्रवृत्त हो? क्योंकि निश्चित रुपेण शरीर ही धर्म का प्रथम साधन होता है।

**भावार्थ -** ब्रह्मचारी का प्रश्न प्रथमतया पार्वती के कुशल-क्षेम से सम्बन्धित था। क्युन्कि पार्वती की तपस्या अत्यन्त कठोर थी। अतः उन्होने प्रश्न पूछा कि होम-यज्ञादि करने के लिये समिधाएं एवं कुश इत्यादि सामग्रियां सरलता से प्राप्त हैं कि नहीं? सरोवर का जल स्नान करने योग्य है कि नही? और सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि तुम अपनी शारीरिक क्षमता के अनुसार तपस्या करती हो कि नही? क्योंकि शारीरिक क्षमता के अनुसार ही कोई भी कार्य करना उचित होता है। अतः शरीर ही किसी भी प्रकार के कार्य का प्रथम एवं अनिवार्य माध्यम होता है। अतः अपने शरीर को आवश्यकता से अधिक कष्ट नही देना चाहिये ।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** जलानि+अपि (सन्धि), क्रियार्थम्= क्रियाभ्यः हितम् इति क्रियार्थम् (चतुर्थी तत्पुरुष समास), समित्कुशम्=समिधश्च कुशा च (द्वन्द्व समास), स्नानविधिक्षमाणि= स्नानस्य विधिः इति स्नानविधिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्मिन् क्षणानि (सप्तमी तत्पुरुष समास), आद्यम्= आदौ भवम् (उपपद तत्पुरुष समास), सुलभम्= सु+लभ्+खल्, प्रथमा विभक्ति,एकवचन, आद्यम्=आदि+यत्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**अर्थान्तरन्यास।

**छन्द-**वंशस्थ।

**अपि त्वदावर्जितवारिसंभृतं, प्रवालमासामनुबन्धि वीरुधाम्।**

**चिरोज्झितालक्तकपाटलेन ते, तुलां यदारोहति दन्तवाससा ।।३४।।**

**प्रसंग-** फिर वहां स्थित लताओं के बारे में प्रश्न पूछा कि पार्वती के द्वारा सिंचित पौधों का पल्लवन ठीक प्रकार से हो रहा है कि नही?

**अनुवाद-** (प्रश्न करते हुए) तुम्हारे द्वारा सिञ्चित जल से संवर्धित इन लताओं का किसलय अर्थात् पल्लवन निरन्तर हो रहा है है न? जो कि चिरकाल से त्यक्त लाक्षारस के समान (तुम्हारे) रक्त (वर्ण के) अधरोष्ठ से समानता रखते हैं।

**भावार्थ-** पहले तो ब्रह्मचारी ने यज्ञादि से सम्बन्धित प्रश्न पूछा। उसके बाद तपोवन में रहने वाले वृक्ष-लतादि के बारे में भी पूछा। उन्होने पूछा कि तुम इन वृक्ष -लतादि की सेवा करती हो कि नही? तुम इनका प्रतिदिन सिञ्चन करती हो कि नही? तुम्हारी सेवा से इनका पल्लवन हो रहा है कि? क्योंकी ये ही तो तुम्हारे ओष्ठ से समानता रहते हैं। तुमने दीर्घकाल से लाक्षारस की रक्तिमा से अपने ओष्ठ को रंगा नही है, लाक्षारस से रहित रहित, किंतु फिर भी स्वाभाविक रुप से रक्त वर्ण से युक्त ओष्ठ से ये समानता रखते हैं।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** यदारोहति=यत्+आरोहति (सन्धि), त्वदावर्जितवारिसम्भृतम्= त्वया आवर्जितम् इति त्वदावर्जितम् (तृतीया तत्पुरुष समास), त्वदावर्जितं च तद् वारि इति त्वदवर्जितवारि (तेनधारय समास), तेन संभृतम् (तृतीया तत्पुरुष समास), दन्तवाससा=दन्तानां वासः इति दन्तवासः तेन (षष्ठी तत्पुरुष समास), सम्भृतम्=सम्+भृ+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन,

अनुबन्धि=अनु+बन्ध+णिनि, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, आरोहति=आ+रुह्+लट् लकार, प्रथम पुरुष,एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**प्रतीप।

**छन्द-**वंशस्थ।

**अपि प्रसन्नं हरिणेषु ते मनः, करस्थदर्भप्रणयापहारिषु ।**

**य उत्पलाक्षि! प्रचलैर्विलोचनै स्तवाक्षिसादृश्यमिव प्रयुञ्जते ॥३५॥**

**प्रसंग-** पुनः लताओं के सम्बन्ध में ही प्रश्न पूछा।

**अनुवाद-** (पुनः प्रश्न करते हुए ब्रह्मचारी पूछते हैं कि) (तुम्हारे) हाथ में स्थित कुशों को प्रेमपूर्वक छिनने वाले मृगों के प्रति तुम्हारा मन प्रसन्न है क्या? हे उत्पलाक्षि अर्थात् कमल के समान नेत्रों वाली ! जो प्रचल नेत्रों से तुम्हारे नेत्रों की समानता करने का मानो अभिनय सा करते हैं।

**भावार्थ-** आगे प्रश्न पूछते हैं कि ये मृग जिनको तुम प्रतिदिन अपने हाथों से निवार इत्यादि भोजन कराती हो। बडे ही अधिकार से ये तुम्हारे हाथ से स्वयं भोजन छिन लेते हैं। इनके प्रति तुम प्रसन्न चित्त तो हो ना? क्योंकि इस तपोवन में ये ही मृग ही तो तुम्हारे नेत्रों से समानता रखते हैं। अतः चंचल नेत्रों वाला होकर ये तुम्हारी ही विलोल दृष्टि का अनुसरण करते हैं।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी -** य उत्पलाक्षि=ये+उत्पलाक्षि (सन्धि), प्रचलैर्विलोचनैस्तवाक्षिसादृश्यमिव=प्रचलैः+विलोचनै+तव+अक्षिसादृश्यम्+इव (सन्धि), करस्थदर्भप्रणयापहारिषु= करे तिष्ठन्तीति करस्थाः (उपपद समास), करस्थाः दर्भाः इति करस्थदर्भाः (कर्मधारय समास), तेषां प्रणयापहारिणः तेषु (षष्ठी तत्पुरुष समास), उत्पलाक्षि= उत्पले इव अक्षिणी यस्याः सा इति उत्पलाक्षी (बहुब्रीही समास), अक्षिसादृश्यम्=अक्ष्णोः सादृश्यम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), करस्थ=कर+स्था+क, प्रचलैः=प्र+चल्+अच्, तृतीया विभक्ति, बहुवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** उत्प्रेक्षा।

**छन्द-**वंशस्थ।

**यदुच्यते पार्वति! पापवृत्तये, न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः ।**

**तथा हि ते शीलमुदारदर्शने, तपस्विनामप्युपदेशतां गतम् ॥३६॥**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारी ने पार्वती के आचरण की प्रशंसा की, जो कि अन्य तपस्वियों के लिये उदाहरण स्थापित कर चुका था।

**अनुवाद-** हे पार्वती! रुप पापवृत्ति के लिये नही होता है, ऐसा जो कहते हैं, वह वचन सत्य है। क्योंकि हे विशाल नेत्रों वाली! तुम्हारा शील अर्थात् आचरण तपस्वियों के लिये प्रमाणस्वरूप हो गया है।

**भावार्थ-** हे पार्वती! तुम रूपवती हो। तुम्हारा ये रुप कल्याणकारी है । यह किसी भी प्रकार की पापवृत्ति की ओर मनुष्य को नही ढकेलता है। ऐसा कहा भी जाता है कि सुन्दरता पापवृत्ति मे कारण नही होता है। अतः विशाल नेत्रो वाली तुम्हारा आचरण तपस्वियों के लिये एक महान उदाहरण प्रस्तुत करता है।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी -** यदुच्यते= यत्+उच्यते (सन्धि), रूपमित्यव्यभिचारि=रूपम्+इति+अव्यभिचारि (सन्धि), तद्वचः=तत्+वचः (सन्धि), तपस्विनामप्युपदेशताम्=तपस्विनाम्+अपि+उपदेशताम् (सन्धि), पापवृत्तये=पापस्य वृत्तिः पापवृत्तिः तस्यै (षष्ठी समास), अव्यभिचारि= न व्यभिचरतीति अव्यभिचारि (नञ् समास), तपस्विनाम्=तपः अस्ति येषां ते इति तपस्विनः तेषाम्(बहुब्रीही समास), उच्यते=ब्रू, लट् लकार, प्रथम पुरुष,एकवचन, उपदेशताम्=उप+दिशि+घञ्+तल्+टाप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** अर्थान्तरन्यास।

**छन्द-**वंशस्थ।

**विकीर्णसप्तर्षिबलिप्रहासिभिस्तथा न गाङ्गैः सलिलर्दिवश्च्युतैः।**

**यथा त्वदीयैश्चरितैरनाविलैर्महीधरः पावित एष सान्वयः ॥३७॥**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारी ने पार्वती के सदाचरण की प्रशंसा करना जारी रखा।

**अनुवाद-** यह महीधर सप्तर्षियों द्वारा बिखेरे गये पुष्पोहार से हास्ययुक्त एवं स्वर्ग से गिरे हुए गंगा के जल से उतना पवित्र नही किया गया, जितना तुम्हारे सदाचरणों से वंशसहित पवित्र हो गया है।

**भावार्थ-** तुम्हारा आचरण इतना शुद्ध तथा सात्विक है कि ये हिमायल पर्वत भी दिनोदिन पवित्र होता जा रहा है। इतना पवित्र तो हिमालय पर्वत पहले भी नही था, जबकि पहले से ही सीधे गंगा स्वर्ग से यहां गिरती आयी है। और स्वयं सप्त ऋषियों द्वारा इस गंगा के जल में पुष्प को डाला जाता है। अतः तुम्हारे सदाचरण के कारण ही सारा वंश पवित्र हो गया है।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** प्रहासिभिस्तथा=प्रहासिभि+तथा (सन्धि), सलिलैर्दिवश्च्युतैः=सलिलैः+दिवः+च्युतैः (सन्धि), त्वदीयैश्चरितैरनाविलैर्महीधरः=त्वदीयैः+चरितैः+अनाविलैः+महीधरः (सन्धि), महीधरः= मह्याः धरः (षष्ठी तत्पुरुष समास), अनाविलैः= न अविलानि इति अनाविलानि तैः (नञ् तत्पुरुष समास), सान्वयः= अन्वयेन सह (अव्ययीभाव समास), विकीर्ण= वि+कॄ+क्त, च्युतैः= च्यु +क्त, तृतीया विभक्ति, बहुवचन, पावितः= पू +णिच्+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** व्यतिरेक।

**छन्द-**वंशस्थ।

**अनेन धर्मः सविशेषमद्य मे, त्रिवर्गसारः प्रतिभाति भाविनि।**

**त्वया मनोनिर्विषयार्थकामया, यदेक एव प्रतिगृह्य सेव्यते ॥३८॥**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारी ने पार्वती के धर्माचरण की प्रशंसा की।

**अनुवाद-** हे भाविनि! इस कारण से आज मुझको धर्म त्रिवर्गों मे अर्थात् धर्म, अर्थ, काम में श्रेष्ठ प्रतीत हो रहा है, क्युन्कि मन को अर्थ और काम से रहित करके अर्थात् निर्विषय करके मात्र धर्म को ही स्वीकार करके (उसका) सेवन कर रही हो।

**भावार्थ-** ब्रह्मचारी रूप शिव कहते हैं कि तुम्हारे धर्म के आचरण की महानता को देखकर मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि धर्म, अर्थ, काम में धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है । क्युन्कि तुमने यह प्रमाणित कर दिया है कि अर्थ और काम से रहित होकर केवल धर्म के माध्यम से भी श्रेष्ठ जीवन-यापन किया जा सकता है।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** सविशेषमद्य=सविशेषम्+अद्य (सन्धि), यदेकः= यत्+एकः, भाविनि= प्रशस्तः भावः यस्याः अस्तीति भाविनी तत्सम्बुद्धौ (बहुब्रीही), सविशेषम्= विशेषेण सह (अव्ययीभाव समास), त्रिवर्गसारः=त्रयाणां वर्गः इति त्रिवर्गः (षष्ठी तत्पुरुष समास), मनोनिर्विषयार्थकामया= निर्गतः विषयः ययोः तौ इति निर्विषयौ (बहुब्रीही समास), अर्थश्च कामश्च इति अर्थकामौ (द्वन्द्व समास), मनसः निर्विषयौ अर्थकामौ यस्याः सा तया (बहुब्रीही समास), प्रतिभाति=प्रति+भा, लट् लकार, प्रथम पुरुष,एकवचन, प्रतिगृह्य=प्रति+ग्रह+ ल्यप्, सेव्यते= सेव्+कर्मवाच्य, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन ।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**अनुमान ।

**छन्द-**वंशस्थ ।

**प्रयुक्तसत्कारविशेषमात्मना, न मां परं संप्रतिपत्तुमर्हसि ।**

**यतः सतां संनतगात्रि संगतं, मनीषिभिः साप्तपदीनमुच्यते ॥३९॥**

**प्रसंग-** पार्वती के इसप्रकार अतिथिसत्कार करने के कारण प्रसन्न हुए ब्रह्मचारी ने स्वयं को पार्वती का हितैषी बताया ।

**अनुवाद-** हे सन्नतगात्रि अर्थात् शोभनीय अंगो वाली! आपके द्वारा जिसका विशेष अतिथिसत्कार किया गया है, ऐसे मुझको परकीय अर्थात् पराया समझना उचित नही है। क्युन्कि विद्वानों द्वारा सज्जनों की मित्रता को सप्तपदी अर्थात् सात पदों के उच्चारणमात्र से होने वाला कहा गया है।

**भावार्थ-** ब्रह्मचारी कहते हैं कि हे सन्नतगात्रि! तुमने जिसप्रकार मेरा अतिथि-सत्कार किया है, उससे मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न हो गया है। और मै तुम्हार शुभचिन्तक हूं, अतः मुझे अपना ही समझो, और बात को मानो।क्योंकि विद्वानों का कहना है कि सज्जन पुरुष मित्रता को सप्तपदी कहते हैं । और हमारे बीच तो मित्रता स्थापित हो चुकी है ।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** प्रयुक्तसत्कारविशेषम्=सत्कारस्य विशेषः इति सत्कारविशेषः (षष्ठी तत्पुरुष समास), प्रयुक्तः सत्कारविशेषः यस्य सः तम् (बहुब्रीही समास), सन्नतगात्रि=सम्यक् नतम् इति सन्नतम् (प्रादि तत्पुरूष समास), सन्नतं गात्रं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ (बहुब्रीही समास), मनीषिभिः= मनसः ईषिणः इति मनीषिणः (षष्ठी तत्पुरूष समास), साप्तपदीनम्=सप्तानां पदानां समाहारः इति सप्तपदम् (द्विगु समास० तेन अवाप्यम् (तृतीया तत्पुरुष समास), सम्प्रतिपत्तुम्=सम्+प्रति+पद्+तुमुन् ।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार=**अर्थान्तरन्यास।

**छन्द-**वंशस्थ।

**अतोऽत्र किंचिद्भवतीं बहुक्षमां, द्विजातिभावादुपन्नचापलः।**

**अयं जनः प्रष्टुमनास्तपोधने, न चेद्रहस्यं प्रतिवक्तुमर्हसि ।।४०।।**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारी ने स्थापित मित्रता के आधार पर पार्वती ने कुछ प्रश्न पूछने की इच्छा जतायी।

**अनुवाद-** हे तपस्विनि! इसलिये इस विषय में अत्यधिक क्षमा भाव से युक्त होते हुए आपसे ब्राह्मण होने के कारण उत्पन्न हुई चपलता वाला यह व्यक्ति अर्थात् मैं कुछ पूछना चाहता हूं। यदि कोई गोपनीय बात न हो तो उत्तर दें।

**भावार्थ-** हमारे बीच मित्रता का भाव तो स्थापित हो चुका है। इसी मैत्रीभावना से प्रेरित होकर मै कुछ पूछना चाहता हूं। अतः प्रश्न पूछने से पहले ही मै क्षमाप्रार्थी हूं। हे तपस्विनी! मैं एक ब्राह्मण हूं, किंतु फिर भी धृष्टता के साथ मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूं। यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो कृपा उत्तर दें।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** अतोऽत्र= अतः+अत्र, किञ्चिद्भवतीम्=किञ्चित्+भवतीम्, प्रष्टुमनास्तपोधने=प्रष्टुमनाः+तपोधने, तपोधने= तप एव धनं यस्याः सा इति तपोधना (बहुब्रीही समास) तत्सम्बुद्धौ, बहुक्षमाम्=बह्वी क्षमा यस्यां सा ताम् (बहुब्रीही समास), उपपन्नचापलः=उपपन्नं चापलं यस्य सः (बहुब्रीही समास), प्रष्टुमनाः= प्रष्टुं मनः यस्य सः (बहुब्रीही समास), रहस्यम्=रहसि भवम् (सप्तमी तत्पुरुष समास), बहुक्षमाम्=बहु+क्षम्+अण्+टाप्, द्वितिया विभक्ति, एकवचन, प्रतिवक्तुम्=प्रति+वच +तुमुन्

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**परिकर।

**छन्द-**वंशस्थ।

**कुले प्रसूतिः प्रथमस्य वेधसस्त्रिलोकसौन्दर्यमिवोदितं वपुः।**

**अमृग्यमैश्वर्यसुखं नवं वयस्तपः फलं स्यात्किमतः परं वद ।।४१।।**

**प्रसंग-** उन्होने पार्वती से कहा कि तुम हरप्रकार की सुख-सम्पदा से सम्पन्न हो, फिर तपस्या करने का क्या कारण है?

**अनुवाद-**प्रथम प्रजापति के वंश मे तुम्हारा जन्म हुआ है, तुम्हारा शरीर (वह स्थान है, जहां) मानो त्रिलोकों का सौन्दर्य समाहित हो गया है, (तुम्हारे लिये) सम्पत्ति सुख अन्वेषणीय नही है, (तुम्हारी) आयु नवीन है अर्थात् तुम युवा हो, अतः इससे बढकर तपस्या का फल क्या हो सकता है? बताओं।

**भावार्थ-** ब्रह्मचारी पार्वती से प्रश्न पूछता है कि तुम्हारा जन्म तो इतने महान परिवार में हुआ है। तुम प्रजापति के वंश में जन्मी हो। सुन्दरता की दृष्टिकोण से तुम्हारे सामने कोई तीनों लोकों मे से कोई भी नही टिक सकता है। धन-सम्पदा, वैभव आदि तुम्हारे लिये सरलता से प्राप्तव्य है। तुम नवयुवती भी हो। अतः जब तुम इतनी ज्यादा वैभव-साधन-सम्पन्न हो, तो फिर तुमको इतनी कठोर तपस्या करने का क्या प्रयोजन है? मनुष्य तपस्या करके जो भी प्राप्त करना चाहता है, वह तो पहले से ही तुम्हारे पास है।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-**

वेधसस्त्रिलोकसौन्दर्यमिवोदितम्=वेधसः+त्रिलोकसौन्दर्यम्+इव+उदितम् (सन्धि), वयस्तपः=वयः+तपः (सन्धि), त्रिलोकसौन्दर्यम्=त्रयाणां लोकानां समाहारः इति त्रिलोकम् (द्विगु समास) तेषां सौन्दर्यम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), ऐश्वर्यसुखम्=ऐश्वर्यस्य सुखम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), अमृग्यम्=न मृग्यम् (नञ् समास), प्रसूतिः=प्र+सू+क्तिन्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, अमृग्यम्=नञ्+मृग्+यत्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**उत्प्रेक्षा।

**छन्द-**वंशस्थ।

**भवत्यनिष्टादपि नाम दुःसहान्मनस्विनीनां प्रतिपत्तिरीदृशी।**

**विचारमार्गप्रहितेन चेतसा, न दृश्यते तच्च कृशोदरि त्वयि ॥४२॥**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारी ने कहा कि परिवार एवं समाज से उपेक्षित स्त्रियां तपस्या में प्रवृत्त होती हैं, लेकिन तुम तो अत्यन्त सम्मानित व्यक्ति हो, तो फिर तुम्हारे द्वारा तपस्या करने का क्या कारण है?

**अनुवाद-** असहनीय अपमान के कारण मानिनी स्त्रियों की ऐसी (तपस्या मे) प्रवृत्ति होती है। (किन्तु) हे कृशोदरि! विचारपथ से भेजे गये मन से वह भी (ऐसा असहनीय तिरस्कार भी) तुम्हारे विषय में दिखाई नही देती है।

**भावार्थ-** ब्रह्मचारी ने अपना कौतुहल जारी रखते हुए आगे कहा कि हे देवी! सामान्यतया तो स्त्रियां अपने गृहजनों अथवा परिजनों एवं समाज द्वारा तिरस्कार प्राप्त होने पर वैराग्य भाव से तपस्या की ओर उद्यत होती हैं। लेकिन हे कृशोदरि! तुमने किस कारण से समस्त सांसारिक सुख का त्याग करके इतनी कठोर तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया है? मैने तुम्हारे इस तपस्या के पीछे के कारण को जानने का बहुत प्रयत्न किया। लेकिन किसी भी व्यक्ति के द्वारा किसी भी प्रकार का तिरस्कार तुम्हारे प्रति नही किया गया है। तो फिर तुम्हारे इस कृत्य का कारण क्या है ?

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** भवत्यनिष्टादपि= भवति+अनिष्टात्+अपि (सन्धि), दुःसहान्मनस्विनीनाम्=दुःसहात्+मनस्विनीनाम् (सन्धि), प्रतिपत्तिरीदृशी=प्रतिपत्तिः+ईदृशी (सन्धि), तच्च=तत्+च (सन्धि), दुःसहात्=दुःखेन सह्यते तस्मात् (तृतीया तत्पुरुष समास), अनिष्टात्= न इष्टम् इति अनिष्टम् तस्मात् (नञ् समास), विचारमार्गप्रहितेन= विचारस्य मार्गः (षष्ठी तत्पुरुष समास) तस्मिन् प्रहितः तेन (सुप्सुपा समास)।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** उत्पेक्षा।

**छन्द-**वंशस्थ।

**अलभ्यशोकाभिभवेयमाकृतिर्विमानना सुभ्रु! कुतः पितुर्गृहे।**

**पराभिमर्शो न तवास्ति कः करं, प्रसारयेत्पन्नगरत्नसूचये ॥४३॥**

**प्रसंग-**ब्रह्मचारी ने कहा कि तुम प्रत्येक प्रकार से सम्मानित हो, किसी ने कभी तुम्हारा कभी स्पर्श भी नही किया है, तो फिर तपस्या का क्या कारण है?

**अनुवाद-** हे सुभ्रु! (तुम्हारी) यह आकृति शोक और तिरस्कार प्राप्त करने योग्य नही है। पितगृह में अवमानना कैसी? किसी परकीय व्यक्ति के द्वारा तुम्हारा स्पर्श भी नही हुआ है। नाग की मणि के अग्रभाग के लिये हाथ कौन बढायेगा।

**भावार्थ-** हे देवी! तुम्हारा ये शरीर किसी भी प्रकार का दुख एवं तिरस्कार सहन करने का पात्र नही है । पिता का भरपूर प्रेम भी तुमको प्राप्त है । वहां पर किसी भी प्रकार की अवमानना नही हुई है। किसी दुराग्रही व्यक्ति के द्वारा भी तुम्हारा स्पर्श नही किया गया है। अतः पिता के घर में तुमको प्रेम , सम्मान और सुरक्षा प्राप्त थी। भला नाग के मस्तक से मणि को अपने हाथों से छुने का दुस्साहस कौन कर सकता है? तो फिर किस कारण से पिता का गृह त्याग करके तुम इस तपोवन में आयी हो?

**व्याकरण सम्बन्धी नियम-** पितुर्गृहे=पितुः+गृहेः (सन्धि), तवास्ति=तव+अस्ति (सन्धि), सुभ्रु=शोभने भ्रुवौ यस्याः सा (बहुब्रीही तत्सम्बुद्धौ), अलभ्यशोकाभिभवा=न लभ्यम् अलभ्यम् (नञ् तत्पुरूष समास), शोकेन अभिभवः (तृतीया तत्पुरुष समास), अलभ्यः शोकाभिभवः यस्याः सा (बहुब्रीही समास), पन्नगरत्नसूचये=पन्नं निम्नं गच्छतीति पन्नगः (सुप्सुपा समास), रत्नस्य सूचिः इति रत्नसूचिः (षष्ठी तत्पुरुष समास), पन्नगस्य रत्नसूचिः तस्मै (षष्ठी तत्पुरुष समास), विमानना=वि+मन्+णिच्+युच्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, अभिमर्शः=अभि+मृष्+घञ्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** अर्थान्तरन्यास।

**छन्द-**वंशस्थ।

**किमित्यपास्याभरणानि यौवने, धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम्।**

**वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका, विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ॥४४॥**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारी ने पुनः प्रश्न किया कि तुमने सांसारिक सुखों का त्याग करके सन्यासीओं वाले वस्त्र क्यों धारण किया है?

**अनुवाद-** तुम्हारे द्वारा युवावस्था में (धारण करने योग्य) आभूषणों को दूर फेककर, वृद्धावस्था में पहनने योग्य वल्कल को क्यों धारण किया गया है? चन्द्रमा और तारों से प्रकाशित होने वाली रात्रि क्या सूर्योदय की लालिमा को धारण करने में अथवा प्रकाशित करने में समर्थ हो सकती है? बताओ।

**भावार्थ-** अपनी युवावस्था में ही तुमने वृद्धावस्था में धारण करने योग्य वस्त्र को धारण कर लिया है। तुमने शरीर की शोभा बढाने वाले आभूषणों का त्याग क्यों कर दिया है? चन्द्रमा और तारे जो कि रात्रियों को प्रकाशित करते हैं, वे क्या प्रातःकालीन के सूर्योदय की लालिमा को प्रकाशित करने में समर्थ हो सकते हैं। अतः ये वल्कल वाले वस्त्र तुम्हारी सौन्दर्य को कैसे बढायेगे ?

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** किमित्यपास्याभरणानि=किम्+इति+अपास्य+आभरणानि (सन्धि), यद्यरुणाय=यदि+अरूणाय (सन्धि), वार्द्धकशोभि=वृद्धस्य भावः इति वार्द्धकम् (षष्ठी तत्समास), तस्मिन् शोभते (सप्तमी तत्पुरुष समास), स्फुटचन्द्रतारका=चन्द्रश्च तारकाश्च इति चन्द्रतारकाः (द्वन्द्व समास), स्फुटाः चन्द्रतारकाः यस्यां सा (बहुब्रीही समास), अपास्य=अप+अस्+ल्यप्,

विभावरी=वि+भा +वरच्+डीप्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, कल्पते=क्लृप्, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**उपमा।

**छन्द-**वंशस्थ।

**दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रमः, पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः ।**

**अथोपयन्तारमलं समाधिना, न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ।।४५।।**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारी ने कहा कि तुम एक अमूल्य रत्न हो, और तुमको अपने लिये वर प्राप्ति के लिये तपस्या करने की क्या आवश्यकता है?

**अनुवाद-** यदि तुम स्वर्ग चाहती हो तो श्रम व्यर्थ है, (क्युंकि) तुम्हारे पिता का प्रदेश ही देवभूमि है। यदि (सुयोग्य) वर की आकांक्षा है (तो भी) समाधि व्यर्थ है, क्युन्कि रत्न को नही ढूढते हैं, वह तो ढूंढा जाता है।

**भावार्थ-** तुम्हारे इस तपस्या करने का प्रयोजन क्या है? यदि तुम स्वर्ग चाहते हो तो फिर तुम्हारा ये श्रम व्यर्थ है, क्योंकि तुम्हारे पिता का घर तो स्वयं ही स्वर्ग है। सारे देवता यही वास करते हैं। और यदि तुमको अपने लिये सुयोग्य वर की चाह है, तो उसके लिये तपस्या करना उचित नही है, क्योंकि तुम तो एक अमूल्य रत्न हॊ। और रत्न की खॊज तो जौहरी करता है, रत्न अपने जौहरी की खोज नही करता है। अतः किसी भी प्रकार से तुम्हारे द्वारा इतना श्रमसाध्य तप करना उचित नही है।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी -** प्रदेशास्तव=प्रदेशाः+तव (सन्धि), अथोपयन्तारमलम्=अथ+उपयन्तारम्+अलम् (सन्धि), देवभूमयः=देवानां भूमयः (षष्ठी तत्पुरुष समास), उपयन्तारम्=उप यच्छतीति उपयन्ता तम् (उपपद समास), प्रार्थयसे=प्र+अर्थ्+णिच्, लट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन, उपयन्तारम्= उप+यम्+तृच्, द्वितिया विभक्ति, एकवचन, अन्विष्यति=अनु+इष्, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**अर्थान्तरन्यास।

**छन्द-**वंशस्थ।

**निवेदितं निःश्वसितेन सोष्मणा, मनस्तु मे संशयमेव गाहते।**

**न दृश्यते प्रार्थयितव्य एव ते, भविष्यति प्रार्थितदुर्लभः कथम्? ।।४६।।**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारी ने पुनः सुयोग्य-वर की प्राप्ति के लिये इस तपस्या के औचित्य पर प्रश्न उठाया।

**अनुवाद-** (तुम्हारी) ऊष्म निःश्वास ने (तुम्हारी वर-प्राप्ति की इच्छा को) व्यक्त कर दिया है, (किन्तु) मेरा मन तो संशय मे डूब रहा है। (क्युंकि) तुम्हारे द्वारा प्रार्थना करने योग्य ही दिखलाई नही पड रहा है। (और यदि है, तो) प्रार्थित (वह वर) दुर्लभ कैसे होगा?

**भावार्थ-** ब्रह्मचारी द्वारा प्रश्न पूछने पर मर्यादा का पालन करते हुए पार्वती उत्तर तो नही देती हैं किंतु जैसे ही ब्रह्मचारी वर सम्बन्धि प्रश्न पूछते हैं, वैसे ही पार्वती शब्दोच्चारण किये बिना लम्बी सास

छोडती हैं। जिससे ब्रह्मचारी को अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं ही मिल जाता है कि पार्वती की तपस्या का लक्ष्य इच्छित वर की प्राप्ति है। अतः वह कहते हैं कि निःश्वास ऊष्मा ने मेरा उत्तर मुझे दे दिया है कि तुम ये सब मनोवांछित वर की प्राप्ति के लिये कर रही हो। किंतु मै सशंकित हो रहा हूं कि तुमको इसका फल मिलेगा कि नही। क्योंकि इस संसार मे तुमसे श्रेष्ठ कोई वर है ही नही। तुम्हारे जितना सर्वगुणसम्पन्न व्यक्ति भी कहां मिलेगा? और यदि ऐसा कोई सुयोग्य वर है, तो वह स्वयं ही तुम्हारी प्राप्ति के लिये उद्यत होगा। वह तुम्हारे लिये दुर्लभ नही हो सकता है। अतः तुमको तपस्या करने की आवश्यकता ही नही है।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** मनस्तु=मनः+तु (सन्धि), प्रार्थयितव्य एव=प्रार्थयितव्यः+एव (सन्धि), सोष्मणा=ऊष्मणा सह वर्तमानमिति सोष्म तेन (बहुब्रीही समास), प्रार्थितदुर्लभः=दुःखेन लब्धुं शक्यः इति दुर्लभः, प्रार्थितश्च दुर्लभः च (कर्मधारय समास), निःश्वसितेन=निस्+श्वस्+क्त, तृतीया विभक्ति, एकवचन, निवेदितम्=नि+विद्+णिच्+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** काव्यलिंग।

**छन्द-**वंशस्थ

**अहो स्थिरः कोऽपि तवेप्सितो युवा, चिराय कर्णोत्पलशून्यतां गते।**
**उपेक्षते यः श्लथलम्बिनीर्जटाः, कपोलदेशे कलमाग्रपिङ्गलाः ॥४७॥**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारी रुप शिव कहते हैं कि जिसके लिये तुम ये तपस्या कर रही हो, वह लगातार तुम्हारी उपेक्षा कर रहा है।

**अनुवाद-** अहो! तुम्हारे द्वारा ईप्सित युवक कठोर है, जो दीर्घकाल से कर्णकमलों के समान कमलो की शुन्यता को प्राप्त हुए तुम्हारे कपोलों पर, श्लथलम्बिनी धान के अग्रभाग के समान पीत वर्ण की जटाओं की उपेक्षा कर रहा है।

**भावार्थ-** ब्रह्मचारी अपनी बात को बढाते हुए कहते हैं कि तुम दीर्घकाल से तपस्या कर रही हो, किंतु जिस वर की तुमको चाह है, वह हृदय से कितना कठोर और अभिमानी होगा कि अभी तक उसका हृदय तुम्हारे लिये नही पिघला। तभी तो तुम्हारे ये कपोल जो दीर्घकाल से कर्णफूलों से रहित हैं, और तुम्हारी खुली हुई और सदा लटकने वाली पीले रंग की लम्बी केशों की भी उपेक्षा कर रहा है। तुम्हारे जैसे सुकुमारी की तपस्या से भी उसका हृदय द्रवित नही हो रहा है।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** कोऽपि=कः+अपि, तवेप्सितो=तव+ईप्सितः, कपोलदेशे=कपोल एव देशः तस्मिन् (कर्मधारय समास), श्लथलम्बिनीः=श्लथाश्च लम्बिन्यश्च इति श्लथलम्बिन्यः ताः (द्वन्द्व समास), कमलाग्रपिङ्गलाः=कलमानाम् अग्राणि इति कलमाग्राणि (षष्ठी तत्पुरुष समास) तानि इव पिङ्गलाः (कर्मधारय समास), ईप्सितः=आप्+सन्+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, लम्बिनीः=लम्ब+णिनि+डीप्, द्वितिया विभक्ति, एकवचन, उपेक्षते=उप+ईक्ष्, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**उल्लास।

**छन्द-**वंशस्थ।

**मुनिव्रतैस्त्वामतिमात्रकर्शितां, दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदाम्।**

**शशाङ्कलेखामिव पश्यतो दिवा, सचेतसः कस्य मनो न दूयते ॥४८॥**

**प्रसंग-** शिव पुनः उस वर की पार्वती के प्रति उपेक्षा की निन्दा करते हैं।

**अनुवाद-**मुनियों के योग्य व्रतों से (अर्थात् मुनिव्रत को करने से) अत्यन्त दुर्बल हुई तथा (जिसके) सूर्य की किरणों के द्वारा आभुषणॊ (के धारण करने योग्य शरीर के) स्थान झुलस गये हैं, इसप्रकार दिन में शशांकरेखा अर्थात् चन्द्रमा की रेखा के समान तुमको देखते हुए किस सहृदय का मन दुखी नही होता।

**भावार्थ-** इतने दीर्घकाल से तुम जो ऐसी कठोर तपस्या कर रही हो, उसके कारण तुम अत्यन्त दुर्बल हो गयी हो, खुले आसमान रहने से तथा सूर्य की पूजा करने से सूर्य की किरणे सीधे तुम्हारे शरीरे जिस अंग पर पडती हैं, वह भी झुलस गया है। अतः आभूषणों से शॊभा बढाने वाला तुम्हारा गौर्ण वर्ण शरीर अब श्यामल वर्ण में परिवर्तित हो गया है। अभी तुम्हारी स्थिति ऐसी प्रतीत होती है जैसे कि दिन में चन्द्रकला की होती है। दिन में प्रकाशित सूर्य की किरणों के समकक्ष चन्द्रमा कान्तिहीन प्रतीत होता है, वैसे ही तुम भी स्वास्थ्य हानि को प्राप्त होकर अत्यन्त कृश एवं क्षीण हो गयी हो। और तुम्हारी ऐसी स्थिति को देखकर किसी भी दयालु व्यक्ति का हृदय दुखी हो जायेगा, तो फिर उस वर का हृदय दुखी क्यों नही होता है?

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** मुनिव्रतैस्त्वामतिमात्रकर्शिताम्=मुनिव्रतैः+त्वाम्+अतिमात्रकर्शिताम् (सन्धि), शशांकलेखामिव=शशांकलेखाम्+इव, मनो नः=मनः+न, मुनिव्रतैः=मुनीनां व्रतानि इति मुनिव्रतानि तैः (षष्ठी तत्पुरुष समास), सचेतसः=चेतसा सह वर्तमानः इति सचेताः तस्य (बहुब्रीही समास), कर्शिताम्=कृश्+णिच्+क्त+टाप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, दिवाकर=दिवा+कृ+ट, आस्पदाम्=आ+पद्+घञ्, द्वितिया विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**उपमा।

**छन्द-**वंशस्थ।

**अवैमि सौभाग्यमदेन वञ्चितं, तव प्रियं यश्चतुरावलोकिनः।**

**करोति लक्ष्यं चिरमस्य चक्षुषो, न वक्त्रमात्मीयमरालपक्ष्मणः ॥४९॥**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारी के अनुसार वह वर तो दुर्भाग्यशाली है, जो कि तुम्हारे सौन्दर्य कॊ देख ही नही पा रहा है।

**अनुवाद-** (मै) तुम्हारे प्रिय (वर) को सौभाग्य के मद से वञ्चित समझता हूं, जो कि सुन्दर दिखने वाली कुटिल भौहों वाली इस नेत्र के सामने अपने वक्त्र को दीर्घकाल से लक्ष्य नही बना पा रहा है।

**भावार्थ-** ब्रह्मचारी कहते हैं कि तुम्हारे द्वारा प्रार्थित वर अवश्य ही दुर्भाग्यशाली है, अतः अभी तक वह तुम्हारे सौभाग्य के मद से वंचित है। अभी तक वह तुम्हारे मधुरावलोकन वाले एवं कुटिल भौहों वाले का वह लक्ष्य नही बन पा रहा है। उसे तुम्हारे सौन्दर्य का लाभ नही मिल पा रहा है, लेकिन इसका कारण वह स्वयं ही है।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** यश्चतुरावलोकिनः= यः+चतुरावलोकिनः (सन्धि), चिरमस्य= चिरम्+अस्य (सन्धि), वक्त्रमात्मीयमरालपक्ष्मणः=वक्त्रम्+आत्मीयम्+अरालपक्ष्मणः (सन्धि), सौभाग्यमदेन=सुभगस्य भावः इति सौभाग्यम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्य मदः तेन (षष्ठी तत्पुरुष समास), चतुरावलोकिनः=चतुरम् अवलोकते तस्य (द्वितिया तत्पुरुष समास), सौभाग्य=सुभग+ष्यञ्, वञ्चितम्=वञ्च्+णिच्+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, चतुरावलोकिनः=चतुर+अव+लोक्+णिनि, षष्ठी विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** काव्यलिङग, अनुमान।

**छन्द-**वंशस्थ।

**कियच्चरं श्राम्यसि गौरि! विद्यते, ममापि पूर्वाश्रमसञ्चितं तपः।**

**तदर्धभागेन लभस्व काङ्क्षितं, वरं तमिच्छामि च साधु वेदितुम्।।५०।।**

**प्रसंग-**ब्रह्मचारी आगे कहते हैं कि तुमने पर्याप्त तपस्या कर ली है, मेरे द्वारा संचित तप के फल का आधा हिस्सा तुम ले लो और मनोवांछित फल को प्राप्त कर लो।

**अनुवाद-** हे गौरी! (तुम) कब तक (तपस्यारूपी) श्रम करोगी? मेरा भी पूर्वाश्रमसंचित अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम में संचित तप है। उसके अर्ध भाग से मनोवांक्षित वर को प्राप्त कर लो। (परन्तु पहले) मै उस वर को भली-भाति जानना चाहता हूं।

**भावार्थ-** ब्रह्मचारीरुप शिव कहते हैं कि हे देवी! तुमकब तक ऐसे तपस्या करती रहोगी? तुमने पर्याप्त श्रम कर लिया है। मैं भी एक ब्रह्मचारी हूं और मैने भी तपस्या करके तप का संचय कर लिया है। अतः तुम चाहो हो तो मेरे द्वारा एकत्रित तप का आधा भाग भी तुम ले लो, और इच्छित वर की प्राप्ति कर लो। किंतु पहले तुम मुझे उस वर के बारे में विस्तारपूर्वक बता दो, मैं उसके विषय में जानने का इच्छुक हूं।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** कियच्चिरम्=कियत्+चिरम् (सन्धि), ममापि=मम+अपि (सन्धि), तमिच्छामि=तम्+इच्छामि (सन्धि), पूर्वाश्रमसञ्चितम्=पूर्वश्च असौ आश्रमः पूर्वाश्रमः (कर्मधारय समास) तस्मिन् सञ्चितम् तम् (सप्तमी तत्पुरुष समास), कांक्षितम्=काङक्षा यस्य सः तम् (बहुब्रीही समास), वेदितुम्=विद्+तुमुन्, सञ्चितम्=सम्+चि+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**गूढोक्ति।

**छन्द-**वंशस्थ।

**इति प्रविश्याभिहिता द्विजन्मना, मनोगतं सा न शशाक शंसितुम्।**

**अथो वयस्यां परिपार्श्ववर्तिनीं, विवर्तिनानञ्जननेत्रमैक्षत।।५१।।**

**प्रसंग-** इसप्रकार ब्रह्मचारी के कहने पर भी लज्जावश पार्वती कुछ कह न सकी। और अपनी सखी को उत्तर देने के लिये इशारा किया।

**अनुवाद-** इसप्रकार, ब्राह्मण द्वारा (अन्तर्हृदय) मे प्रवेश करके कही गई भी वह पार्वती अपने हृदयस्थ वर को (हृदयस्थ वर के बारे में) न बता सकी, तब अपने पास मे स्थित सखी को तिरछे और काजलरहित नेत्रों से देखा।

**भावार्थ-** इसप्रकार जब ब्राह्मण ने पार्वती से वर के विषय में जानना चाहा, तो लज्जावश पार्वती कुछ कह न सकी। अतः पास में स्थित अपनी सखी को अञ्जनरहित-तिरछे नेत्रों से सखी को देखा। और नेत्रों से इशारा करते हुए ब्रह्मचारी को उत्तर देने के लिये कहा।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** प्रविश्याभिहिता=प्रविश्य+अभिहिता (सन्धि), द्विजन्मना=द्वे जन्मनी यस्य सः इति द्विजन्मा तेन (बहुब्रीही समास), मनोगतम्=मनः गतम् (द्वितीया तत्पुरुष समास), परिपार्श्ववर्तिनीम्=परिपार्श्वे वर्तते इति परिपार्श्ववर्तिनी तम् (सप्तमी तत्पुरुष समास), विवर्तितानञ्जननेत्रम्=अविद्यमानम् अञ्जनं ययोः ते इति अनञ्जने (बहुब्रीही समास), विवर्तिते अनञ्जने नेत्रे यस्मिन् तत् (बहुब्रीही समास), शंसितुम्=शंस्+तुमुन्, शशाक=शक्, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, परिपार्श्ववर्तिनीम्=परिपार्श्व+वृत्+णिनि+ङ्ईप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, वयस्याम्=वयस्+यत्+टाप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**अनुप्रास।

**छन्द-**वंशस्थ।

**सखी तदीया तमुवाच वर्णिनं, निबोध साधो तव चेत्कुतूहलम्।**
**यदर्थमम्भोजमिवोष्णवारणं, कृतं तपःसाधनमेतया वपुः ।।५२।।**

**प्रसंग-** अतः उस पार्वती की सखी ने ब्रह्मचारी के प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया।

**अनुवाद-** उस (पार्वती की) सखी ने उस ब्रह्मचारी से कहा-हे साधु! यदि आपको (जानने की) उत्सुकता है,तो जानिए (सुनिए), जिसके लिये (जिसके प्राप्ति के लिये) इस (पार्वती) के द्वारा कमल को छत्र के समान (अपने) शरीर को तप का साधन बनाया है।

**भावार्थ-** अतः पार्वती की सखी ने ब्रह्मचारी को उत्तर देना प्रारम्भ किया कि ये देव! यदि आप जानना चाहते हैं तो उस वर के विषय में सुनिये, जिसके लिये पार्वती ने अपने कमल समान कोमल शरीर को तप का साधन बनाया। तात्पर्य यह है कि जैसे धूप से बचने के लिये कमल को छाता बनाना उचित नही है, ऐसी स्थिति में तो कमल झुलस ही जाता है। इसीप्रकार इसने अपने कोमल शरीर को कठोर तपस्या का साधन बनाया।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** यदर्थम्भोजमिवोष्णवारणम्=यदर्थम्+अम्भोजम्+इव+उष्णवारणम् (सन्धि), तदीया=तस्याः इयम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), वर्णिनम्=प्रशस्तः वर्णः अस्यां अस्ति इति वर्णिनम् (बहुब्रीही समास), अम्भोजम्=अम्भसि जायते (सप्तमी तत्पुरुष समास), उष्णवारणम्= उष्णं वार्यते (द्वितीया तत्पुरुष समास), तपः साधनम्= तपसः साधनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), अम्भोजम्=अम्भसि+जन्+ड, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, उष्णवारणम्=उष्ण+वृ+णिच्+ल्युट्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**उपमा।

**छन्द-**वंशस्थ।

**इयं महेन्द्रप्रभृतीनधिश्रियश्चतुर्दिगीशानवमत्य मानिनी।**

**अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात्पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति ।।५३।।**

**प्रसंग-** पार्वती की सखी ने कहा कि पार्वती को अन्य किसी की आकांक्षा नही है, केवल शिव उसके मन में बसे हैं।

**अनुवाद-** मानिनी यह (पार्वती) अत्यधिक ऐश्वर्य वाले इन्द्र आदि चतुर्दिशाओं के स्वामी को उपेक्षित करके मदन अर्थात् कामदेव के दण्डित कर देने के कारण सौन्दर्य से आकृष्ट न होने वाले पिनाक (शिव) को पति रुप मे प्राप्त करना चाहती है।

**भावार्थ-** मेरी सखी पार्वती अत्यन्त स्वाभिमानी है, अतः ऐश्वर्यशाली इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि देवताओं के धन, सम्पदा, वैभवादि भी उसकी आकृष्ट नही कर सके। इसकी आकांक्षा केवल शिव की प्राप्ति है, किंतु जब कामदेव ने पार्वती की सहायता करनी चाही, और शिव कों पार्वती के सौन्दर्य की ओर आकृष्ट कराना चाहा, तो शिव ने क्रोधित होकर उसे भस्म कर दिया। इसप्रकार सौन्दर्य से आकृष्ट न होने वाले शिव की प्राप्ति के लिये तपस्या के अतिरिक्त और उपाय शेष न बचा।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी -** महेन्द्रप्रभृतीनधिश्रियश्चतुर्दिगीशानवमत्य= महेन्द्रप्रभृतीन्+अधिश्रियः+चतुर्दिगीशान्+अवमत्य (सन्धि), मानिनी=प्रशस्तः मनः अस्याः अस्तीति मानिनी (बहुब्रीही समास), अधिश्रियः=अधिका श्री येषां ते तान् (बहुब्रीही समास), महेन्द्रप्रभृतीन्=महान् चासौ इन्द्रः महेन्द्रः (कर्मधारय समास), महेन्द्रः प्रभृतिः येषां ते इति महेन्द्रप्रभृतयः तान् (बहुब्रीही समास, न अरुपहार्यम्= हर्तुं योग्यः हार्यः, रुपेण हार्यः इति रूपहार्यः (तृतीया तत्पुरुष समास), न रूपहार्यः (नञ् समास), पिनाकपाणिम्= पिनाकः पाणौ यस्यः सः पिनाकपाणिः तम् (बहुब्रीही समास)।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** अनुमान।

**छन्द-**वंशस्थ।

**असह्यहुंकारनिवर्तितः पुरा, पुरारिमप्राप्तमुखः शिलीमुखः।**

**इमां हृदि व्यायतपातमक्षिणोद्, विशीर्णमूर्तेरपि पुष्पधन्वनः ।।५४।।**

**प्रसंग-** सखी ने कामदेव के बाणों द्वारा घायल पार्वती के हृदय की अवस्था का वर्णन किया।

**अनुवाद-** पहले (शिवजी की) असह्यहुङ्कार से लौटा दिया गया (तथा) शिव तक जिसका अग्रभाग नही पहुच सका, ऐसे (नष्ट शरीर वाले भी) कामदेव के बाण ने इस पार्वती को हृदय में अति तीव्र प्रहार पूर्वक व्रणित कर दिया।

**भावार्थ-** कामदेव ने कामरूपी बाण से शिव कों निशाना बनाना चाहा तो शिव तो उससे प्रभावित नही हुए। और उन्होने अपने असह्यहुंकार से उस तीर को लौटा दिया। किंतु कामदेव का वह लौटा हुआ तीर पार्वती के हृदय को पूर्णतया द्रवित कर दिया।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** व्यायतपातमक्षिणोद्=व्यायतपातम्+अक्षिणोत् (सन्धि), विशीर्णमूर्तेरपि =विशीर्णमूर्तेः+अपि (सन्धि), असह्यहुङ्कारनिवर्तितः=सोढुं योग्यं सह्यम् न सह्यम् इति असह्यम् (नञ् समास), असह्यः हुङ्कारः इति असह्यहुङ्कारः (कर्मधारय समास) तेन निवर्तितः (तृतीया तत्पुरुष समास), पुरारिम्=पुराणाम् अरिम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), पुष्पधन्वनः=पुष्पाणि एव धनुः यस्य सः इति पुष्पधन्वाः तस्य (बहुब्रीही समास), शिलीमुखः=शिली मुखे यस्य सः (बहुब्रीही समास), असह्य=नञ्+सह्+यत्, हुंकार=हुम्+कृ+घञ्, पातम्=पत्+घञ्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**सन्देह।

**छन्द-**वंशस्थ।

**तदा प्रभृत्युन्मदना पितुर्गृहे, ललाटिकाचन्दनधूसरालका।**
**न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिं, तुषारसंघातशिलातलेष्वपि ।।५५।।**

**प्रसंग-** पार्वती की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा कि कामदेव के बाणों से आहत होने के बाद से लेकर अभी तक वह सुखपूर्वक नही रह पायी है।

**अनुवाद-** तब से लेकर पिता के घर में उत्कट कामभावना से युक्त मस्तक पर लगे हुए चन्दन से मटमैले केशों वाली बाला (वह पार्वती) कभी हिमराशि के शिलाखण्डों पर भी सुख को नही प्राप्त करती थीं।

**भावार्थ-** तब से पार्वती शिव को पाने के लिये सदैव तत्पर रहने लगी। जब वह पिता के घर में निवास कर रही थी, इस प्रेमभावना की पीडा से बचने के लिये मस्तक पर चन्दन का लेप लगाती थी । और स्वंय को शीतलता प्रदान करने का प्रयत्न करती रही, उपचार तो फलित नही हुआ, बल्कि उसके केश भी मटमैले हो गये। शीतलता प्राप्ति के लिये इधर-उधर विचरण करते हुए हिमराशि के शिलाखण्डो पर जाकर शयन भी किया, किंतु फिर भी उसका शीतोपचार न हो पाया।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-**प्रभृत्युन्मदना=प्रभृति+उन्मदना (सन्धि), पितुर्गृहे=पितुः+गृहे (सन्धि), शिलातलेष्वपि=शिलातलेषु+अपि (सन्धि), उन्मदना=उत्कटः मदनः यस्याः सा (बहुब्रीही समास), तुषारसंघातशिलातलेषु=शिलायाः तलानि इति शिलातलानि (षष्ठी तत्पुरुष समास), तुषाराणां संघाताः इति तुषारसंघाताः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तुषारसंघाताः एव शिलातलानि तेषु (कर्मधारय समास), संघात=सम्+हन्+घञ्, निर्वृत्तिम्=निर्+वृत्+क्तिन्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**विशेषोक्ति।

**छन्द-**वंशस्थ।

**उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिनः, सवाष्पकण्ठस्खलितैः पदैरियम्।**
**अनेकशः किंनरराजकन्यका, वनान्तसंगीतसखीररोदयत् ।।५६।।**

**प्रसंग-** सखी ने पार्वती की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए कहा कि उनकी इस अवस्था को देखकर किन्नर राजकन्यायें भी दुखी हो गई।

**अनुवाद-** इस (पार्वती) ने शिव के चरित के गाये जाने पर अश्रु सहित अतएव गद्गद् कण्ठ से विशीर्ण अर्थात् निकले हुए शब्दों से, वन प्रदेश में संगीत देने वाली किन्नर राजकन्याओं को भी अनेक बार रुला दिया।

**भावार्थ-** सखी पार्वती की दयनीय स्थिति के बारे में बताते हुए कहती है कि शान्ति एवं सुख की प्राप्ति के लिये पार्वती संगीत मे निपुण किन्नर राजवंश की पुत्रियों के साथ शिवचरित के गीत गाती थी। किंतु शिव के गीत गाते गाते वह रोने लगती थीं। और फिर गला रुद्ध हो जाने के कारण गीत गाने में असमर्थ हो जाती थीं। उनकी इस स्थिति को देखकर किन्नरराजपुत्रियां भी रुदन प्रारम्भ कर देती थीं।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** पदैरियम्=पदैः+इयम् (सन्धि), सखीररोदयत्=सखीः+अरोदयत् (सन्धि),उपात्तवर्णे=उपात्तः वर्णः यस्मिन् सः तस्मिन् (बहुब्रीही समास), वनान्तसंगीतसखी= वनस्य अन्तः वनान्तः (षष्ठी तत्पुरुष समास), वनान्ते संगीतम् वनान्तसंगीतम् (सप्तमी तत्पुरुष समास), वनान्तसंगीतेन सख्यः ताः (तृतीया तत्पुरुष समास), किन्नरराजकन्यकाः=कुत्सिताः नराः इति किन्नराः (प्रादि तत्पुरुष समास), तेषां कन्यकाः (षष्ठी तत्पुरुष समास), अनेकशः=न एकशः (नञ् समास), उपात्त=उप+आ+दा+क्त, अरोदयत्=रुद्+णिच्, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**विषम।

**छन्द-**वंशस्थ।

**त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं, निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत।**

**क्व नीलकण्ठ व्रजसीत्यलक्ष्यवागसत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना ।।५७।।**

**प्रसंग-** सखी के अनुसार पार्वती को प्रत्येक स्थान पर शिव ही दिखाई देते थे, शयन करते हुए भी शिव के होने का आभास होता था।

**अनुवाद-** रात्रि के तीसरे प्रहर में शेष रहने वाली, क्षण मात्र के लिये नेत्रों को बन्द करके सहसा, 'हे नीलकण्ठ! कहा जा रहे हो? इसप्रकार असम्बद्ध प्रलाप करती हुई मिथ्या ही कण्ठ में अपनी भुजाओं को लपेटती हुई (वह पार्वती) जाग जाती थी।

**भावार्थ-** पार्वती की स्थिति इतनी दयनीय हो चुकी थी कि उन्हे हर जगह, हर समय शिव की ही अनुभूति होती थी। निद्रा भी उनका साथ छोड चुकी थी, किंतु यदा-कदा जब कभी रात्रि के तीसरे प्रहर में क्षण मात्र के लिये उनकी आंखें बन्द भी हो जाती थीं, तो उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि शिव उनसे दूर जा रहे हैं। अतः वह उन्हे दूर जाने से रोकने का प्रयास करने में रोने लगती थीं। इसप्रकार शिव की अनुपस्थिति में शिव मे रमने वाली पार्वती भ्रमवश शिव को अपने पास समझकर उनके गले में अपनी भूजाओं को लपटने का प्रयास करती थी। और स्वंय ही जाग जाती थीं।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-**

व्रजसीत्यलक्ष्यवागसत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना=व्रजसि+इति+अलक्ष्यवाक्+असत्यकण्ठार्पितबाहुबन्धना (सन्धि), त्रिभागशेषासु=शिष्यते इति शेषः, तृतीयः भागः इति त्रिभागः (कर्मधारय समास), त्रिभागः शेषः यासां ताः तासु (बहुब्रीही समास), नीलकण्ठ=नीलः कण्ठः यस्य सः तत्सम्बुद्धौ (बहुब्रीही समास), अलक्ष्यवाक्= लक्षितुं योग्या लक्ष्या, न लक्ष्या अलक्ष्या (नञ् समास), अलक्ष्या

वाक् यस्याः सा (बहुब्रीही समास), निमील्य=नि+मील्+ल्यप्, व्यबुध्यत=वि+बुध्, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**अनुप्रास।

**छन्द-**वंशस्थ।

**यदा बुधैः सर्वगतस्त्वमुच्यसे, न वेत्सि भावस्थमिमं कथं जनम्।**

**इति स्वहस्तोल्लिखितश्च मुग्धया, रहस्युपालभ्यत चन्द्रशेखरः।। ५८।।**

**प्रसंग-** पार्वती के सखी के अनुसार पार्वती प्रायः शिव का आवाहन किया करती थी। और शिव के न आने पर उन्हे उलाहना दिया करती थीं।

**अनुवाद-** जब तुम (शिव) विद्वानों द्वारा सर्वव्यापक कहे जाते हो, तो फिर रतिभाव में स्थित इस जन को (मुझ पार्वती को) क्यों नही जानते हो? इसप्रकार सरल स्वभाव वाली इसके द्वारा (पार्वती के द्वारा) अपने हस्त से चित्रित चन्द्रशेखर (शिव) को उलाहना दिया गया है।

**भावार्थ-** शिव के प्रेम में पार्वती इतनी बेसुध हो चुकी थी कि अपने हाथों से शिव का चित्र बनाकर उस चित्र को ही साक्षात शिव समझने लगती थी। और उलाहना देने लगती थी, कि हे शिव! तुम तो सर्वज्ञाता एवं सर्वव्यापी हो, तुमको तो सबकुछ ज्ञात है, तो फिर मेरे इस प्रेम को क्यों नही समझ पा रहे हो?

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** सर्वगतस्त्वमुच्यसे=सर्वगतः+त्वम्+उच्यसे (सन्धि), स्वहस्तोल्लिखितश्च=स्वहस्तोल्लिखितः+च (सन्धि), रहस्युपालभ्यत=रहसि+उपालभ्यत (सन्धि), सर्वगतः=सर्वं गतः (द्वितीया तत्पुरुष समास), भावस्थम्=भावे तिष्ठति इति भावस्थः तम् (उपपद तत्पुरुष समास), चन्द्रशेखरः=चन्द्रः शेखरः यस्य सः(बहुब्रीही समास), उल्लिखितः=उत्+लिख्+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**स्वभवोक्ति।

**छन्द-**वंशस्थ।

**यदा च तस्याधिगमे जगत्पतेरपश्यदन्यं न विधिं विचिन्वती।**

**तदा सहास्माभिरनुज्ञया गुरोरियं प्रपन्ना तपसे तपोवनम्।।५९।।**

**प्रसंग-** और अन्त में जब शिव नही आये, तो पार्वती ने तपस्या करने का निश्चय किया।

**अनुवाद-** जगत् के स्वामी शंकर के अधिगम अर्थात् प्राप्ति के लिये खोज करती हुई पार्वती ने जब अन्य कोई उपाय नही देखा, तब यह (पार्वती) पिता की आज्ञा से हमारे साथ तपस्या करने के लिये तपोवन में आ गई।

**भावार्थ-** इसप्रकार विरह में व्याकुल पार्वती ने बहुत प्रकार से अनुनय-विनय करके शिव को प्राप्त करना चाहा। किंतु शिव की प्राप्ति किसी भी प्रकार से सम्भव नही हो सका। तब पार्वती ने शिवप्राप्ति के लिये तपस्या करने का निश्चय किया और इस तपोवन में आ गयी।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** तस्याधिगमे=तस्य+अधिगमे (सन्धि), जगत्पतेरपश्यदन्यम्=जगत्पतेः+अपश्यत्+अन्यम् (सन्धि), सहास्माभिरनुज्ञया=सह+अस्माभिः+अनुज्ञया (सन्धि), गुरोरियम्=गुरोः+इयम् (सन्धि), जगत्पतेः= जगताम् पतिः जगत्पतिः तस्य (षष्ठी तत्पुरुष समास), तपोवनम्=तपसं वनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), प्रपन्ना=प्र+पद्+क्त+टाप्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**काव्यलिंग।

**छन्द-**वंशस्थ।

**द्रुमेषु सख्या कृतजन्मसु स्वयं, फलं तपः साक्षिषु दृष्टमेष्वपि।**

**न च प्ररोहाभिमुखोऽपि दृश्यते, मनोरथोऽस्याः शशिमौलिसंश्रयः ।।६०।।**

**प्रसंग-** सखी ने कहा कि तपस्या करने के बाद भी पार्वती को शिवरुपफल की प्राप्ति नही हुई।

**अनुवाद-** सखी पार्वती के द्वारा स्वयं लगाये गये, तपस्या के साक्षीभूत इन वृक्षों मे भी फल दिखाई देने लगा है। किन्तु शिव सम्बन्धी इसकी अभिलाषा अंकुरित होने वाला भी दिखाई नही पडती है।

**भावार्थ-** पार्वती की सखी आगे कहती है कि तबसे पार्वती आज तक तपस्या कर रही है, किंतु उसे फल की प्राप्ति नही हुई। जबकि यहां रहते हुए उसने जो वृक्षारोपण किया था, वह भी अब बडे होकर फल देने लगे हैं, बस पार्वती की तपस्या ने ही कोई फल नही दिया है, और न ही फल प्राप्ति का कोई लक्षण दिखाई नही दे रहा है। इसके साक्षी स्वंय ये वृक्ष ही हैं।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** दृष्टमेष्वपि=दृष्टम्+एषु+अपि (सन्धि), प्ररोहाभिमुखोऽपि=प्ररोहाभिमुखः+अपि (सन्धि), मनोरथोऽस्याः=मनोरथः+अस्याः, कृतजन्मसु=कृतं जन्म येषां तेषु (बहुब्रीही समास), तपः साक्षिषु=तपसः साक्षिणः तेषु (षष्ठी तत्पुरुष समास), प्ररोहाभिमुखः=मुखम् अभितः अभिमुखः (प्रादि तत्पुरुष समास), प्ररोहे अभिमुखः (सप्तमी तत्पुरुष समास), प्ररोह=प्र+रुह्+घञ्।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**व्यतिरेक।

**छन्द-** वंशस्थ।

## 17.3 पारिभाषिक शब्दावली

**शिरोरुह** = केश

**ध्रुवेच्छाम्** = दृढ संकल्प वाली

**मनोरथज्ञ** = मन की इच्छा को जानने वाले

**अहार्यनिश्चया** = दृढ निश्चय वाली

**पद्मसुगन्धिना** = कमल के समान सुगन्धित

**अनाविलै** = पवित्र

**मानिनी** = स्वाभिमानी

## 17.4 अभ्यासार्थ प्रश्न-

1. श्लोक संख्या २ की सप्रसंग व्याख्या करें।
2. श्लोक संख्या १५ की सप्रसंग व्याख्या करें।
3. श्लोक संख्या २१ की सप्रसंग व्याख्या करें।
4. श्लोक संख्या ३५ की सप्रसंग व्याख्या करें।

## 17.5 सारांश

शिव के द्वारा कामदेव के भस्म हो जाने पर पार्वती निराश हो गई, और उसे यह भान हो गया कि बाह्य सौन्दर्य के द्वारा शिव को आकर्षित करना सम्भव नही है। अतः उसने तपोवन में जाकर कठिन तपस्या करने का ढृढ निश्चय किया, जिससे उसे शिव पति रुप में प्राप्त हो सके। किंतु उसके इस निश्चय से माता मेना प्रसन्न नही हुई। अतः उन्होने उसे रोकने का प्रयत्न किया। किंतु पार्वती अपने निश्चय पर अडिग रही। अतः पिता हिमालय से आज्ञा प्राप्त करके उसने तपोवन के लिये प्रस्थान किया। और एक तपस्विनी का जीवन व्यतीत करने लगी। तथा निराजल एवं निराहार रहकर प्रत्येक ऋतु में चाहे ग्रीष्म, शरद, वर्षा आदि समभाव से तपस्या करने से विचलित नही हुई। अतः इसप्रकार तपस्या करते हुए देखकर शिव स्वयं ब्रह्मचारी का वेष धारन करके उस पार्वती की परीक्षा लेने आये।और पार्वती से उसकी तपस्या का कारण पूछा। लज्जावश पार्वती स्वयम् तो उत्तर न दे सकी, अतः अपनी सखी से उत्तर देने के लिये कहा। तब पार्वती की सखी ने पार्वती की तपस्या का कारण बताया कि वह पति रुप में शिव को प्राप्त करना चाहती है। किंतु इतना कष्ट सहने के बाद भी शिवरुप फल की प्राप्ति नही हो पा रहा है।

## 17.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. पाण्डेय प्रद्युम्न, कुमारसम्भवम् (पञ्चम् सर्ग), चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013.
2. उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, टाइम टेबुल प्रेस, बनारस,1947.
3. शर्मा , उमाशंकर, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा विश्वभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2007.
4. विश्वेवर आचार्य, काव्यप्रकाश (मम्मट कृत),ज्ञान मण्डल, वाराणसी 1967.

# इकाई 18

# कुमारसम्भव (पञ्चम सर्ग)
# (श्लोक संख्या 61 से 86 की व्याख्या )

**इकाई की रुपरेखा**



## 18.0 उद्देश्य

इस प्रस्तुत इकाई में कालिदास रचित कुमारसम्भवम् महाकाव्य के पंचम सर्ग के श्लोक संख्या ६० से लेकर 86 तक का अध्ययन किया जा रहा है। जिसमें ब्रहमचारी द्वारा शिव कि निन्दा, पार्वती का ब्रह्मचारी पर क्रोधित होना और अन्त में शिव का अपने स्वरूप में प्रकट होना- इस इकाई का अभिधेय है।

## 18.1 प्रस्तावना

17 सर्गों मे कालिदास द्वारा रचित कुमारसम्भवम् नामक इस महाकाव्य में नायक शिव तथा नायिका पार्वती हैं। शिव परमदेव हैं, अतः परमदेव की पति रुप में प्राप्ति के लिये जिसप्रकार से कठिन से कठिन एवं विपरीत परिस्थितियों में पार्वती ने तपस्या करने का अपना ढृढसंकल्प नही छोड़ा, वह न केवल उसके आत्मविश्वास बल्कि आध्यात्मिक प्रेम की भी पुष्टि करता है। इसी पूरे घटनाक्रम को दर्शाने के लिये कलिदास ने प्रसादगुण का आश्रय लेते हुए पांचवे सर्ग की रचना की है । सामान्यतः भी उनकी रचनाओं मे प्रसाद गुण के ही दर्शन होते हैं। इसके अतिरिक्त "उपमा कालिदासस्य" से तो कालिदास की उपमा अलंकार के प्रयोग की निपुणता तो सर्वविदित ही है। अन्य अलंकारों के प्रयोग में भी वे निपुण है, अतः इस महाकाव्य मे भी उत्प्रेक्षा, अर्थातरन्यास, काव्यलिंग, परिकर आदि का उदाहरण देखने को मिलता है। इसप्रकार कलात्मक विशेषताओं से परिपूर्ण कुमारसम्भवम् कालिदास की महान रचनाओं मे से एक है।

## 18.2 कुमारसम्भवम् (पंचम सर्ग) श्लोक संख्या ६१ से ८६ तक की व्याख्या

**न वेद्मि स प्रार्थितदुर्लभः कदा, सखीभिरस्त्रोत्तरमीक्षितामिमाम्।**
**तपः कृशामभ्यवपत्स्यते सखीं, वृषेव सीतां तदवग्रहक्षताम् ॥६१॥**

**प्रसंग-** पार्वती की सखी ने ब्रह्मचारी से पार्वती की स्थिति को लेकर अपनी चिन्ता व्यक्त की।

**अनुवाद-** (पार्वती की सखी कहती है कि पार्वती के द्वारा) प्रार्थित होने पर भी दुर्लभ वह (शिव), तपस्या के कारण दुर्बलता (को प्राप्त), (तथा) सखियों के द्वारा अश्रुधारा के साथ देखी गई इस पार्वती सखी को उसीप्रकार कब अनुगृहीत करेगें, जिसप्रकार स्वयं के द्वारा वर्षा के रोक जाने से पीडित एवं जोती हुई भूमि को इन्द्र अनुगृहीत करता है, यह मैं नही जानती।

**भावार्थ-** पार्वती की सखी ब्रह्मचारी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए अपनी सखी के विषय मे चिन्ता करते हुए कहती है कि इतना तपस्या करने के बाद भी शिव अभी भी पार्वती को प्राप्त नही हुए हैं। निरन्तर तपस्या करने के कारण पार्वती दिन प्रतिदिन दुर्बल होती जा रही है। निरन्तर उसके नेत्रों से अश्रु की धारा भी बहती रहती है। पता नही, शिव कब उसका पाणिग्रहण करके उस पर कृपा करेंगा । भाव यह है कि जिसप्रकार वर्षा न करने के कारण सूखी हुई भूमि इन्द्र की कृपापात्री होने का इंतजार करती है, उसी प्रकार यह पार्वती शिव की कृपापात्र होने के लिये व्याकुल है।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-**

सखीभिरस्त्रोत्तरमीक्षितामिमाम्=सखीभीः+अस्त्रोत्तरम्+ईक्षिताम्+इमाम् (सन्धि), वृषेव=वृषा+इव (सन्धि), प्रार्थितदुलर्भः=प्रार्थितश्चासौ दुर्लभः (कर्मधारय समास), तपः कृशाम्=तपसः कृशा ताम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), अस्त्रोत्तरम्=अस्त्रम् उत्तरं यस्मिन् तत् (बहुब्रीही समास), दुर्लभः=दुर्+लभ् +खल्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, ईक्षिताम्=ईक्ष्+क्त+टाप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, अभ्युपपत्स्यते=अभि+उप+पद्, लृट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**उपमा ।

**छन्द-**वंशस्थ।

**अगूढसद्भावमितीङ्गतज्ञया, निवेदितो नैष्ठिकसुन्दरस्तया।**

**अयीदमेवं परिहास इत्युमामपृच्छदव्यञ्जितहर्षलक्षणः ॥६२॥**

**प्रसंग-** पार्वती की सखी द्वारा बताई गई पार्वती की स्थिति को सुनकर ब्रह्मचारी ने पार्वती से स्वयं इस बात की प्रमाणिकता जाननी चाही।

**अनुवाद- (**पार्वती के हृदय की बात को) इंगित करने वाली उस सखी के द्वारा इसप्रकार सद्भाव को बिना छुपाये हुए अर्थात् प्रकाशित किये हुए सुन्दर नैष्ठिक ब्रह्मचारी ने हर्ष के लक्षण को प्रकाशित न करते हुए उमा अर्थात् पार्वती से पूछा कि हे देवी! यह (बात) ऐसी है या परिहास है?

**भावार्थ-** इसप्रकार पार्वती के तपस्या का कारण सखी के द्वारा बताया गया। जिसे सुनकर ब्रह्मचारी शंकित मन हो जाते हैं, तथा खिन्न मन से पार्वती से इस बात की सत्यता के विषय मे जानना चाहते हैं। वह पूछते हैं कि क्या शिव के प्रति तुम्हारा अनुराग सत्य है अथवा यह परिहासपूर्वक कही गयी बात है।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-**अगूढसद्भावमितीङ्गतज्यया=अगूढसद्भावम्+इति+इङ्गितज्यया (सन्धि), नैष्ठिकसुन्दरस्तया=नैष्ठिकसुन्दरः+तया (सन्धि), अयीदमेवं=अयि+इद्म्+एवम् (सन्धि), परिहास

इत्युमामपृच्छदव्यञ्जितहर्षलक्षणः=परिहासः+इति+उमाम्+अपृच्छत्+अव्यञ्जितहर्षलक्षणः (सन्धि), इङ्गितज्यया=इङ्गितं जानातीति इङ्गितज्ञा तया (उपपद तत्पुरुष समास), अगूढसद्भावम्=न गूढः इति अगूढः (नञ् समास), सः चासौ भावः इति सद्भावः (कर्मधारय समास), नैष्ठिकसुन्दरः=नैष्ठिकश्च असौ सुन्दरः (कर्मधारय समास), अगूढ=नञ्+विद् +णिच्+क्त, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, नैष्ठिक=निष्ठा+ठञ्।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**परिकर।

**छन्द-**वंशस्थ।

**अथाग्रहस्ते मुकुलीकृताङ्गुलौ, समर्पयन्ती स्फटिकाक्षमालिकाम्।**
**कथंचिदद्रेस्तनया मिताक्षरं, चिरव्यवस्थापितवागभाषत ॥६३॥**

**प्रसंग-** अतः पार्वती ने झिझकते हुए ब्रह्मचारी के प्रश्न का अत्यन्त अल्प शब्दों मे उत्तर देने का प्रयत्न किया।

**अनुवाद-** ब्रह्मचारी के प्रश्न पूछने के बाद हिमालय पर्वत की पुत्री ने कलियों के समान (परस्पर) जुडी हुई ऊंगलियों वाले हाथ के अग्रभाग में स्फटिक से निर्मित जपमाला को धारण करके देर तक अपनी बात (जो वह कहने वाली थीं) को (मन में) व्यवस्थापित करके किसीप्रकार अल्पशब्दों मे कहा।

**भावार्थ-** इसप्रकार पुनः ब्रह्मचारी द्वारा प्रश्न पूछने पर पार्वती उत्तर देने के लिये तैयार होती है। उत्तर देने से पूर्व वह स्फटिक की माला से जप कर रही थी। किंतु अभी स्फटिक की माला को उसने अपने हाथ में ही रोक और थोडी देर जप करने पर विराम लगा दिया। और उत्तर देने के लिये मन ही मन में वह अपने शब्दों को व्यवस्थित करने लगी और कम से कम शब्दों में उत्तर देने का प्रयत्न करने लगी।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी -** अथाग्रहस्ते=अथ+अग्रहस्ते (सन्धि), कथञ्चिदद्रेस्तनया=कथञ्चित्+अद्रेः+तनया (सन्धि), मुकुलीकृताङ्गुलौ= न मुकुलाः अमुकुलाः (नञ् समास), अमुकुलाः मुकुलाः कृता इति मुकुलीकृताः, मुकुलीकृताः अङ्गुलयः यस्य सः तस्मिन् (बहुब्रीही समास), अग्रहस्ते=अग्रश्चासौ हस्तश्च इति अग्रहस्तः तस्मिन् (कर्मधारय समास), स्फटिकाक्षमालाम्=स्फटिकानाम् अक्षमालिका ताम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), मिताक्षरम्=मितानि अक्षराणि यस्मिन् तत् (बहुब्रीही समास), मुकुलीकृत=मुकुल+च्वि+कृ+क्त, व्यवस्थापित=वि+अव+स्था+णिच्+क्त।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**स्वभावोक्ति।

**छन्द-**वंशस्थ।

**यथाश्रुतं वेदविदां वर त्वया, जनोऽयमुच्चैः पदलङ्घनोत्सुकः।**
**तपः किलेदं तदवाप्तिसाधनं, मनोरथानामगतिर्न विद्यते ॥६४॥**

**प्रसंग-** अतः पार्वती ने प्रश्नों का उत्तर दिया कि एकमात्र तपस्या ही शिवप्राप्ति का साधन है।

**अनुवाद-** हे वेदों को जानने वाले! आपके द्वारा जो सुना गया, यह व्यक्ति (अर्थात् मैं) उच्च पद की प्राप्ति के लिये उत्सुक है। निश्चय ही यह तप उसकी प्राप्ति का साधन है, क्योंकी मनोरथों की विफलता नही होती है।

**भावार्थ-** पार्वती ने अपनी सखी द्वारा कही गई बातों पर स्वीकरोक्ति दी। और कहा कि शिव को पति के रुप में प्राप्त करके मैं एक उच्च पद पर आसीन होना चाहती हूं। अतः मैं तपस्या करना चाहती हूं। क्योंकि तपस्या ही एक ऐसा साधन है, जो कभी व्यर्थ नही होता है, उसका फल अवश्य ही प्राप्त होता है। अतः तपस्या करने से मुझे भी शिव की प्राप्ति अवश्य ही होगी।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-**किलेदं=किल+इदम् (सन्धि),

मनोरथानामगतिर्न=मनोरथानाम्+अगतिः+न (सन्धि), वेदविदाम्=वेद+विद् +क्विप्, षष्ठी विभक्ति,

बहुवचन, अगतिः=अव+गम्+क्तिन्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**अर्थान्तरन्यास।

**छन्द-**वंशस्थ।

**सूक्ति-** तपः किलेदं तदवाप्तिसाधनं, मनोरथानामगतिर्न विद्यते अर्थात् किसी भी प्रकार की तपस्या करने से अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य ही होती है।

**अथाह वर्णी विदितो महेश्वरस्तदर्थिनी त्वं पुनरेव वर्तसे।**

**अमङ्गलाभ्यासरतिं विचिन्त्य तं, तवानुवृत्तिं न च कर्तुमुत्सहे ॥६५॥**

**प्रसंग-** पार्वती के इसप्रकार उत्तर देने पर ब्रह्मचारी का रुप धारण किये हुए शिव ने स्वयं अपनी ही निन्दा की, जिससे पार्वती की अन्तिम परीक्षा लिया जा सके।

**अनुवाद-** इसके बाद ब्रह्मचारी ने कहा- महेश्वर (शिव) विदित है (मेरे द्वारा), फिर भी तुम उसी की अभिलाषिणी हो। अमांगलिक विषयों से सतत प्रेम करने वाला उनको जानकर मैं तुम्हारा समर्थन करने में उत्साह नही रखता हूं।

**भावार्थ-** पार्वती के इसप्रकार उत्तर देने पर ब्रह्मचारी ने प्रत्युत्तर देना प्रारम्भ किया। उस ब्रह्मचारी के अनुसार वह शिव को भली-भाति जानता है, उसके सारे सद्गुणों एवं दुर्गुणों से वह पूर्णतया वह परिचित है। ब्रह्मचारी कहते हैं कि शिव तो सारे अमांगलिक विषयों जैसे भूत-प्रेत, श्मशान, चिता की राख के प्रति ही अनुरक्त रहता है। अतः मुझे तुम्हारे प्रियतम के विषय में सुनकर कोई प्रसन्नता नही हुई। और उसके प्रति तुम्हारा उत्साहवर्धन करने एवं समर्थन करने में मेरा उत्साह समाप्त हो गया है।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी -** विदितो महेश्वरस्तदर्थिनी=विदितः+महेश्वरः+तदर्थिनी (सन्धि), वर्णी=प्रशस्तः वर्णः यस्य अस्ति (बहुब्रीही समास), महेश्वरः=महान् चासौ ईश्वरः (कर्मधारय समास), अमंगलाभ्यासरतिम्=अमंगलस्य अभ्यासः (षष्ठी तत्पुरुष समास) अमंगलाभ्यासे रतिः यस्य सः तम्

(बहुब्रीही समास), अभ्यास=अभि+अस्+घञ्, विचिन्त्य=वि+चिन्त्+णिच्+ल्यप्।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**काव्यलिंग।

**छन्द-**वंशस्थ।

**अवस्तुनिर्बन्धपरे कथं नु ते, करोऽयमामुक्तविवाहकौतुकः।**

**करेण शम्भोर्वलयीकृताहिना, सहिष्यते तत्प्रथमावलम्बनम्॥६६॥**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारीरुप शिव पार्वती के चयन के प्रति असंतुष्टि दिखाते हुए अपना पक्ष प्रस्तुत करते हैं।

**अनुवाद-** तुच्छ वस्तुओं मे आग्रह रखने वाली देवी! वैवाहिक मंगलसूत्र से युक्त तुम्हारा ये हाथ सर्प का कंगन पहनने वाले शम्भु के हाथ के द्वारा प्रथम अवलम्बन को कैसे सहेगा?

**भावार्थ-** अभी भी शिव की निन्दा करते हुए ब्रह्मचारी कहते हैं कि हे देवी। तुम तो मूल्यहीन वस्तुओं से प्रेम करने वाली हो। भला ये तो बताओ कि तुम्हारी और शिव की जोडी किसप्रकार से उचित लग सकती है? विवाह के समय मंगलसूत्र पहनने वाले तुम्हारे हाथों मे सर्प को कंगनरुप मे पहनने वाले शिव का हाथ कैसा लगेगा? क्या तुमको भय नही लगेगा? ये जोडी तो असंगत होगी।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी -** करोऽयम्=करः+अयम् (सन्धि), अवस्तुनिर्बन्धपरे=अप्रशस्तं वस्तु इति अवस्तु (नञ् समास), अवस्तुनि निर्बन्धः इति अवस्तुनिर्बन्धः (सप्तमी तत्पुरुष समास), अवस्तुनिर्बन्धः एव प्रधानं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ (बहुब्रीही समास), तत्प्रथमावलम्बनम्= प्रथमम् अवलम्बनं प्रथमावलम्बनम् (कर्मधारय समास), तदेव प्रथमावलम्बनम् (कर्मधारय समास), वलयीकृत=वलय+च्वि+कृ+क्त।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**विषम।

**छन्द-**वंशस्थ।

**त्वमेव तावत्परिचिन्तय स्वयं, कदाचिदेते यदि योगमर्हतः।**

**वधूदुकूलं कलहंसलक्षणं गजाजिनं शोणितबिन्दुवर्षि च ।६७॥**

**प्रसंग-** पुनः ब्रह्मचारी शिव और पार्वती के जोडे को अनुपयुक्त बताते हैं।

**अनुवाद-** तुम स्वयं ही इतना तो विचार करो कि कलहंसों से चित्रित नववधू का वस्त्र और रुधिर की बूंदों का वर्षा करने वाले गजचर्म, ये दोनो कभी भी (एक-दूसरे के साथ) मिलने योग्य हैं?

**भावार्थ-** पार्वती की परीक्षा लेते हुए ब्रह्मचारी रुप शिव पार्वती को समझाने का प्रयत्न करते हुए कहते हैं कि विवाह में तुम तो कलहंसों से रंगी गई चुनरी को ओढोगी, और तुम्हारा वह शिव तो ऐसे गजचर्म को धारण करेगा, जिससे कि रक्त की बूंदों गिरती रहती हैं। ऐसा शिव तो तुम्हारे योग्य किसी भी प्रकार से नही है।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** वधूदुकूलम्=वध्वाः दुकूलम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), गजाजिनम्=गजस्य अजिनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास)।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**विषम।

**छन्द-**वंशस्थ।

**चतुष्कपुष्पप्रकरावकीर्णयोः, परोऽपि को नाम तवानुमन्यते।**

**अलक्तकाङ्कानि पदानि पादयोर्विकीर्णकेशासु परेतभूमिषु ।६८॥**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारी पार्वती से पूछते हैं कि तुम किसप्रकार शिव के साथ श्मशान में निवास करोगी?

**अनुवाद-** चतुष्कोण वाले आंगन में बिखरे हुए पुष्पों पर रखे जाने वाले तुम्हारे चरणों के लाक्षारस से रंजित (तुम्हारे) पदचिह्नों को बिखरे हुए केशों वाले श्मशान की भूमि पर रखने की क्या कोई शत्रु भी अनुमति दे सकता है?

**भावार्थ-** पार्वती की परीक्षा लेते हुए ब्रह्मचारी रुप धारण किये हुए शिव ने पुनः पार्वती से कहा कि तुम्हारे पिता के गृह मे तो जहां जहां तुम चलती हो, वहां वहां पुष्प बिखरे रहते हैं ताकि तुमको किसी भी प्रकार का कष्ट न हो। किंतु विवाहोपरान्त तुम लाक्षारस से रंजित अपने चरणों को श्मशान भूमि मे कैसे रखोगी, जहां पर शवों के केश बिखरे रहते हैं। तुम्हारा कोई शत्रु भी तुमको इस विवाह के लिये परामर्श नही देगा।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** अलक्तकाङ्कानि=अलक्तकः अङ्कः येषां तानि (बहुब्रीही समास), विकीर्णकेशासु=विकीर्णाः केशाः यासु ताः तासु (बहुब्रीही समास), चतुष्क=चतुर्+कन्, प्रकर=प्र+कृ+अप्, परेत=परा+इ+क्त।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**पर्यायोक्त ।

**छन्द-**वंशस्थ।

**अयुक्तरूपं किमतः परं वद त्रिनेत्रवक्षः सुलभं तवापि यत्?**

**स्तनद्वयेऽस्मिन्हरिचन्दनास्पदे, पदं चिताभस्मरजः करिष्यति ॥६९॥**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारी पार्वती को कहते हैं कि मृत शरीर की चिता के भस्म का लेप करने वाले शिव का स्पर्श भी तुम कैसे कर पाओगी।

**अनुवाद-** तीन नेत्र जिसके हैं ऐसे शिव का वक्ष तुमको सुलभ होने पर भी, इससे अधिक क्या अनुचित हो सकता है, बोलो, कि हरिचन्दन से अनुलिप्त तुम्हारे इस स्तनद्वय पर चिता की भस्म की रज लग जायेगी।

**भावार्थ- -** पार्वती की परीक्षा लेते हुए ब्रह्मचारी रुप शिव पार्वती को पुनः अपना ही उपहास करते हुए कहते हैं कि उस शिव के तो तीन नेत्र हैं, जो कि कुरुपता की निशानी है, वह शिव तो अपने वक्ष पर चिता की भस्म लगाये रहते हैं, ऐसे शिव का आलिंगन तुम कैसे करोगी? तुम्हारे भी स्तनद्वय पर उस अमांगलिक चिता की राख लग जायेगी। अतः तुमको उससे विवाह नही करना चाहिये।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** स्तनद्वयेऽस्मिन्=स्तनद्वये+अस्मिन् (सन्धि), त्रिनेत्रवक्षः=त्रीणि नेत्राणि यस्य सः त्रिनेत्रः (बहुब्रीही समास), तस्य वक्षः (षष्ठी तत्पुरुष), हरेः चन्दनं हरिचन्दनम् (षष्ठी तत्पुरुष) तस्य आस्पदम् (षष्ठी तत्पुरुष समास) तस्य आस्पदम् तस्मिन् (षष्ठी तत्पुरुष समास), स्तनद्वये=स्तनयोः द्वयम् तस्मिन् (षष्ठी तत्पुरुष समास), सुलभम्=सु+लभ्+खल्, प्रथमा विभक्ति,एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**विषम ।

**छन्द-**वंशस्थ।

**इयं च तेऽन्या पुरतो विडम्बना, यदूढया वारणराजहार्यया।**

**विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया, महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति ॥७०॥**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारी पुनः प्रश्न पूछते हैं कि तुम किसप्रकार हाथी की स्थान पर बैल की सवारी कर पाओगी?

**अनुवाद-** तुम्हारे सामने एक और विडम्बना होगी कि गजराज के द्वारा ले जाने योग्य नवविवाहिता तुमको वृद्ध बैल पर अधिष्ठित देखकर मान्यजन हसने लगेगें।

**भावार्थ-** इसके अतिरिक्त एक और बात तुमको लज्जित कर देगी,क्योंकि विवाह के उपरान्त तुमको गजराज पर बैठाकर अपने ससुराल नही ले जाया जायेगा, बल्कि तुम वृद्ध बैल की सवारी करोगी। और यह तो हिमालय की पुत्री के लिये ही नही, बल्कि हर नवविवाहिता के लिये उपहास का विषय हो जायेगा। तुमको बैल पर बैठाकर ससुराल जाते देखकर सारे लोग उपहास करेंगे। क्या ये सब तुम सहन कर पाओगी?

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** तेऽन्या=ते+अन्या (सन्धि), वृद्धोक्षम्=वृद्धश्चासौ उक्षा वृद्धोक्षः तम् (कर्मधारय समास), महाजनः=महान् चासौ जनः (कर्मधारय समास), स्मेरमुखः=स्मेरं मुखं यस्य सः (बहुब्रीही समास), विडम्बना=वि+डम्ब्+णिच्+युच्+टाप्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन, ऊढया=वह्+क्त+टाप्, तृतीया विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**विषम।

**छन्द-**वंशस्थ।

**द्वयं गतं संप्रति शोचनीयतां समागमप्रार्थनया पिनाकिनः।**

**कला च सा कान्तिमती कलावतस्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी॥७१॥**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारी के अनुसार पार्वती और चन्द्रमा दोनो ही शिव-प्राप्ति की इच्छा करने के कारण दयनीय स्थिति में हैं।

**अनुवाद-** पिनाकि अर्थात् शिव को प्राप्त करने की इच्छा से इससमय दोनों की (पार्वती और चन्द्रमा की) की शोचनीय स्थिति है, (प्रथम व्यक्ति है-) चन्द्रमा की वह कान्ति वाली कला और (और दुसरा व्यक्ति है-) इस संसार की नेत्रकौमुदी (अर्थात्) तुम।

**भावार्थ-** ब्रह्मचारी कहते हैं कि मुझे तो लगता है कि तुम्हारी और इस चन्द्रकला की स्थिति एक जैसी ही है। तुमदोनों ही शोचनीय स्थिति में हो, क्योंकि चन्द्रकला, जो स्वयं मे कान्तियुक्त है, सदैव शिव की सिर पर विद्यमान रहना चाहती है। और तुम, जो कि संसार की नेत्रकौमुदी हो, शिव से विवाह करके अपनी स्थिति दयनीय बनानी चाहती हो।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** समागमप्रार्थनया=समागमस्य प्रार्थना तया (षष्ठी तत्पुरुष समास), कलावतः= कला अस्ति अस्य इति कलावत् तस्य (बहुब्रीही समास), कान्तिमती=कान्तिः अस्याः अस्ति इति (बहुब्रीही समास), नेत्रकौमुदी=नेत्रयोः कौमुदी द्वयम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), द्वयम्=द्वौ अवयवौ यस्य तत् (बहुब्रीही समास), समागम=सम्+आ+गम्+अप्, शोचनीयताम्=शुच्+णिच्+अनीयर्+तल्+टाप्, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**दीपक।

**छन्द-**वंशस्थ।

**वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता, दिगम्बरत्वेन निवेदितुं वसु।**
**वरेषु यद् बालमृगाक्षि! मृग्यते, तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने ॥७२॥**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारी शिव की निन्दा करते हुए कहते हैं कि शिव में तो शारीरिक विकृतियां भी हैं, तथा उनके कुल का भी पता नही है।

**अनुवाद-** (शिव का) शरीर विषम नेत्रों वाला है, उसके जन्म का कुछ पता नही है, दिगम्बररुप रहने से धन का भी पता चलता है। हे बाल मृग के नेत्रों के समान नेत्र वाली! वरों मे जो (गुण) ढूंढे जाते हैं, क्या शिव में एक भी हैं?

**भावार्थ-** पार्वती की परीक्षा लेते हुए ब्रह्मचारी रुप शिव पार्वती को अपने ही शारीरिक सौन्दर्य और कुल के विषय में अपशब्द कहते हैं कि वह शिव तो शारीरिक विकृतियों वाला है, उसके तीन नेत्र हैं, उसका जन्म कब और किसके वंश मे हुआ है, इसका भी कोई ज्ञान नही है। धन के अभाव के कारण वह वस्त्रहीन विचरण करता है। अतः विवाह के लिये जो भी गुण एक वर में देखे जाते हैं, वैसा कोई भी गुण इस शिव में नही है। जबकि तुम्हारे नेत्र तो मृग के समान सुन्दर हैं, और हरप्रकार की सुख-सम्पदा से तुम परिपूर्ण हो। तो तुमको उस शिव की क्या आवश्यकता है?

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** विरूपाक्षम्=विगतं रूपं यस्य तत् इति विरूपम् (बहुब्रीही समास), विरूपम् अक्षि यस्य तत् (बहुब्रीही समास), दिगम्बरत्वेन=दिगेव अम्बरं यस्य सः दिगम्बरः (बहुब्रीही समास), तस्य भावः (षष्ठी तत्पुरुष समास) तेन, त्रिलोचने=त्रीणि लोचनानि यस्य सः यस्मिन् (बहुब्रीही समास), बालमृगाक्षि=बालमृग+अक्षि+षच्+ ङीप्, सम्बोधन, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**परिकर।

**छन्द-**वंशस्थ।

**निवर्तयास्मादसदीप्सितान्मनः, क्व तद्विधस्त्वं क्व च पुण्यलक्षणा।**
**अपेक्ष्यते साधुजनेन वैदिकी, श्मशानशूलस्य न यूपसत्क्रिया ॥७३॥**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारी शिव की निन्दा करना जारी रखते हैं।

**अनुवाद-** इस अनिष्ट मनोरथ से (अपने) मन को हटा दो। उसप्रकार का (शिव) कहां? और पुण्यलक्षणों वाली तुम कहां? साधु जन के द्वारा श्मशानभूमि में गढे हुए खूटे का वैदिकी यज्ञीय स्तम्भ के जैसा सत्कार अपेक्षित नही होता है।

**भावार्थ-** पार्वती की परीक्षा लेते हुए ब्रह्मचारी रुप शिव पार्वती को इस विवाह को करने से मना करने का सलाह देते हैं। शिव से विवाह करने की इच्छा अनिष्टकारी है। उससे सम्बन्धित कोई भी वस्तु कल्याणकारी नही है, और तुम तो सर्वगुणसम्पन्न हो। अतः तुम कहां और वह शिव कहां? श्मशान भूमि में गडे हुए खूटे का प्रयोग यज्ञ में नही किया जा सकता है। और तुम इसी यज्यीय स्तम्भ के समान हो, जिसका स्थान श्मशान मे नही हो सकता है। साधुजन भी यही विचार रखते हैं। अतः तुमको श्मशान में रहने वाले शिव से विवाह करने का विचार छोड देना चाहिये।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** निवर्तयास्मादसदीप्सितान्मनः= निवर्तय+ अस्मात् असदीप्सितात्+ मनः (सन्धि), तद्विधस्त्वं=तद्विधः+त्वम् (सन्धि), पुण्यलक्षणा=पुण्यानि लक्षणानि यस्याः सा (बहुब्रीही समास), साधुजनेन=साधुश्चासौ जनः साधुजनः तेन (कर्मधारय समास), श्मशानशूलस्य=श्मशानस्य शूलं तस्य (षष्ठी तत्पुरुष समास), य़ूपक्रिया=यूपस्य सत्क्रिया (षष्ठी तत्पुरुष समास), वैदिकी=वेद+ठञ्+ ङ्ईप्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**विषम, दृष्टान्त।

**छन्द-**वंशस्थ।

**इति द्विजातौ प्रतिकूलवादिनि, प्रवेपमानाधरलक्ष्यकोपया।**

**विकुञ्चितभ्रूलतमाहिते तया, विलोचने तिर्यगुपान्तलोहिते ॥७४॥**

**प्रसंग-** ब्रह्मचारी के इस प्रकार के कथन को सुनकर पार्वती क्रोधित हो जाती है।

**अनुवाद-** इस प्रकार ब्राह्मण के द्वारा प्रतिकूल वचन बोलने पर कांपते हुए होठों से जिसका क्रोध प्रकट हो रहा था, (ऐसी) उस (पार्वती) के द्वारा लाल (हुई) नेत्रों के प्रान्त भाग से भौहों को टेढा करके वक्र दृष्टि डाली गई।

**भावार्थ-** पार्वती की परीक्षा लेते हुए ब्रह्मचारी रुप शिव ने जब इस प्रकार का वचन बोले, तो पार्वती अत्यन्त क्रोधित हो उठी। उसके ओंठ कापने लगे। और उसके नेत्र भी क्रोधवश लाल हो गये। और कांपते हुए होठों से ऐसे अप्रिय वचन बोलने वाले ब्रह्मचारी को क्रोधित होकर वक्र दृष्टि से देखने लगी।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** तिर्यगुपान्तलोहिते=तिर्यक्+उपान्तलोहिते, द्विजातौ=द्वे जाती यस्य सः द्विजातिः तस्मिन् (बहुब्रीही समास), प्रतिकूलवादिनि=कूलं प्रतिगतं प्रतिकूलम्(प्रादि समास), प्रतिकूलं वदतीति प्रतिकूलवादी तस्मिन्(उपपद समास), तिर्यक्=तिरः अञ्चति इति तिर्यक् (उपपद समास), प्रवेपमान=प्र+वेप्+शानच्, तिर्यक=तिरस्+अञ्च्+क्विप्, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**स्वभावोक्ति।

**छन्द-**वंशस्थ।

**उवाच चैनं परमार्थतो हरं, न वेत्सि नूनं यत एवमात्थ माम्।**

**अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं, द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् ॥७५॥**

**प्रसंग-** क्रोधित पार्वती उस ब्रह्मचारी से उसके अज्यानता के विषय में कहती हैं।

**अनुवाद-** (पार्वती) इस (ब्राह्मण) से बोली, तुम निश्चय ही वास्तव में हर अर्थात् शिव को नही जानते हो। क्योंकि (इसीलिये) मुझसे इसप्रकार कह रहे हो। मन्द बुद्धि वाले (मनुष्य) अलौकिक और दुर्बोध कारण वाले महात्माओं के चरित्र से द्वेष करते हैं।

**भावार्थ-** क्रोध के वशीभूत होकर पार्वती ने ब्राह्मण को कहा कि निश्चय ही तुम मेरे शिव के विषय में कुछ नही जानते हो, इसी कारण ऐसे अपशब्दों का प्रयोग कर रहे हो। ऐसा लगता है कि तुम

अल्पबुद्धि वाले हो, तभी तो शिव की वास्तविकता न जानकर उस महात्मा शिव के प्रति द्वेषपूर्ण प्रलाप कर रहे हो।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** चैनं=च+एनम् (सन्धि), यत एवमात्थ=यतः+एवम्+आत्थ (सन्धि), मन्दाश्चरितं=मन्दाः+चरितम् (सन्धि), परमार्थतः=परमश्चासौ अर्थः परमार्थः तस्मात् (कर्मधारय समास), अचिन्त्यहेतुकम्=न चिन्त्यः अचिन्त्यः (नञ् समास), अचिन्त्यः हेतुः यस्य तत् (बहुब्रीही समास), महात्मनाम्=महान् आत्मा येषां ते महात्मनः तेषाम् (बहुब्रीही समास), आत्थ=ब्रू+लट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

**अलंकार-**अर्थान्तरन्यास।

**छन्द-**वंशस्थ।

**सूक्ति-** द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम् अर्थात् मूर्ख जन महात्माओं से द्वेष रखते हैं अर्थात् अज्ञानीजन को ज्ञानी जन की बुद्धिमता से द्वेष रहता है।

**विपत्प्रतीकारपरेण मंगलं, निषेव्यते भूतिसमुत्सुकेन वा।**

**जगच्छरण्यस्य निराशिषः सतः, किमेभिराशोपहतात्मवृत्तिभिः॥७६॥**

**प्रसंग-** क्रोधित पार्वती ने शिव की महिमा का बखान करना प्रारम्भ किया।

**अनुवाद-** विपत्ति का प्रतीकार करने में तत्पर अथवा ऐश्वर्य की इच्छा रखने वाले के द्वारा मांगलिक वस्तु का भोग किया जाता है। जगत के रक्षक और निराशिष शिव का इन तृष्णा के कारण कलुषित कर दी गई अन्तःकरण की वृत्तियों से क्या प्रयोजन?

**भावार्थ-** पार्वती शिव के तिरस्कार के विषय मे कहती हैं, कि मांगलिक और अमांगलिक सांसारिक वस्तुऒं के प्रति आग्रह रखने वाले मनुष्यों के लिये हैं। जिसे विपत्तियों से भय लगता है, और जो ऐश्वर्य का अभिलाषी है, उसके लिये ही मांगलिक-अमांगलिक वस्तुऒं का भेद महत्व रखता है। किंतु शिव तो भगवान हैं, वह जगत् के रक्षक हैं, उन्हे किससे भय हो सकता है? महान् योगी होने के कारण उन्हें किसी भी वस्तु की इच्छा ही नही है, न केवल सम्पूर्ण प्राणी-जगत् बल्कि देवताऒं की भी इच्छापूर्ति करने वाले शिव को किसकी इच्छा हो सकती है। ये सारी वस्तुएं तो मन को कलुषित करने वाली है। इनका शिव से क्या सम्बन्ध है?

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** भूतिसमुत्सेकेन=भूत्यां भुतौ वा समुत्सुकः तेन (षष्ठी या सप्तमी तत्पुरुष समास), निराशिषः=निर्गता आशीः यस्य सः निराशी तस्य (बहुब्रीही समास), प्रतीकार=प्रति+कृ+घञ्, उपहत=उप+हन्+क्त।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-**परिकर।

**छन्द-**वंशस्थ।

**अकिंचनः सन् प्रभवः स संपदां, त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।**

**स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते, न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः॥७७॥**

**प्रसंग-** पार्वती शिव के परस्पर विरोधी गुणों का भी बखान करती है।

**अनुवाद-** वह (शिव) धनरहित होते हुए भी सम्पदाओं का कारण है, श्मशान में रहते हुए भी तीनों लोकों का स्वामी है, भयंकर रुप होने पर भी वह कल्याणाकारी है- ऐसा कहा जाता है। पिनाकि के यथार्थ स्वरूप को जानने वाला (कोई) नही है।

**भावार्थ-** पार्वती शिवचरित का वर्णन करते हुए कहती हैं कि शिव को किसी भी भौतिक सम्पदा की क्या आवश्यकता है? वह तो स्वयं ही धन-सम्पदाओं का कारण है। श्मशान में रहते हुए भी वह तीनों लोको के स्वामी है। उनका रुप भले की भयंकर प्रतीत होता है, किंतु उनका वही रुप सबके लिये कल्याणकारी है। और यह सर्वविदित है । इस महादेव शिव के यथार्थ स्वरूप को जानना किसी के भी बस की बात नही है। अतः तुमको शिव के स्वरुप का बोध कैसे हो पायेगा? तुम तो सांसारिक वस्तुओं को ही मूल्यवान समझते हो।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** स सम्पदां= सः+ सम्पदाम् (सन्धि), शिव इत्युदीर्यते= शिवः+इति+उदीर्यते (सन्धि), अकिञ्चनः=नास्ति किञ्चन यस्य सः (बहुब्रीही समास), त्रिलोकनाथ= त्रीणि लोकः इति त्रिलोकः (कर्मधारय समास), त्रिलोकस्य नाथः (षष्ठी तत्पुरुष समास), भीमरूपः= बिभेति अस्मात् इति भीमम् (पञ्चमी तत्पुरुष), सन्= अस्+शतृ प्रथमा विभक्ति, एकवचन, याथार्थ्यविदः= यथार्थ+ष्यञ्+विद्+क्विप्+ प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** विरोधाभास।

**छन्द-** वंशस्थ।

**विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा, गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा।**

**कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखरं, न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः ॥७८॥**

**प्रसंग-** पार्वती शिव के विराट स्वरूप का वर्णन करती हैं।

**अनुवाद-**विश्व ही है रुप जिसका, ऐसे शिव का शरीर आभूषणों से चमकता हो अथवा सर्पो से लिपटा हुआ हो, उसने गजचर्म धारण किया हो अथवा रेशमी वस्त्र, (सिर में) कपाल धारण किया हो अथवा चन्द्रमा, (कुछ भी) निश्चित रुप से नही कहा जा सकता है।

**भावार्थ-** अतः ऐसे महादेव का स्वरूप विराट है। सम्पूर्ण विश्व ही उसका स्वरूप है। अतः ऐसा शिव चाहे स्वर्ण आभूषण धारण करे या सर्पो को अपने शरीर में लिपटा ले, चाहे वह गजचर्म धारण करे या चन्द्रमा, इससे उसके विषय में कुछ भी निश्चय नही हो सकता है।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** स्यादथवेन्दुशेखरं= स्यात्+अथवा+इन्दुशेखरम् (सन्धि), विश्वमूर्तेरवधार्यते=विश्वमूर्तेः+अवधार्यते (सन्धि), विश्वमूर्तेः= विश्वं मूर्तिः यस्य सः तस्य (बहुब्रीही समास), पिनद्धभोगि=पिनद्धाः भोगिनः यस्मिन् तत् (बहुब्रीही समास), गजाजिनालम्बि=गजस्य अजिनम् गजाजिनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), गजाजिनमालम्बि=गजस्य अजिनम् गजाजिनम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), गजाजिनम् आलम्बते इति (उपपद समास), दुकूलधारि=दुकूलं धारयति इति (उपपद समास), इन्दुशेखरम्=इन्दु शेखरे यस्य सः तम् (बहुब्रीहि समास), विभूषणोद्भासि=वि+भूष्+ल्युट्+उद्+ भास्+णिनि प्रथमा विभक्ति, एकवचन, दुकूलधारि= दुकूलं धारयति इति (उपपद समास), इन्दुशेखरम्= इन्दु शेखरं यस्य सः तम् (बहुब्रीही समास)।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** परिकर।

**छन्द-** वंशस्थ।

**तदङ्गसंसर्गवाप्य कल्पते, ध्रुवं चिताभस्मरजो विशुद्धये।**
**तथाहि नृत्याभिनयक्रियाच्युतं, विलिप्यते मौलिभिरम्बरौकसाम् ॥७९॥**

**प्रसंग-** पार्वती शिव की महिमा का बखान अभी भी कर रही है।

**अनुवाद-** उस शिव के शरीर का संसर्ग पाकर चिता के भस्म के रज विशुद्ध करने में निश्चय ही समर्थ हो जाते हैं। इसीकारण (शिव के) नृत्याभिनय के समय गिरी हुई धूलि को देवतागण मस्तकों पर लगाते हैं।

**भावार्थ-** पार्वती शिव के स्वरूप के विषय में कहती हैं कि शिव का शरीर इतना पवित्र है कि उसका स्पर्श पाकर चिता की भस्म की धूल भी पवित्र हो जाती है, और वह भी कल्याणकारी हो जाती है। अतः देवगण भी उस चिता के भस्म के धूल की कृपा पाने के लिये लालायित रहते हैं। इसीलिये जब शिव नृत्य करते हैं तो नृत्य करने से गिरे हुए भस्म की धूलि को ही देवतागण अपने मस्तक पर लगा लेते हैं।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** चिताभस्मरजो विशुद्धये=चिताभस्मरजः+विशुद्धये (सन्धि), मौलिभिरम्बरौकसाम्=मौलिभिः+अम्बरौकसाम् (सन्धि), तदङ्गसंसर्गम्=तस्य अङ्गं तदङ्गम्(षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्य संसर्गः तम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), नृत्याभिनयक्रियाच्युतम्=नृत्ये अभिनयः नृत्याभिनयः (सुप्सुपा समास), तस्य क्रिया (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्याः च्युतम् (सुप्सुपा समास), अम्बरौकसाम्= अम्बर ओकः येषां ते तेषाम्(बहुब्रीही समास), अभिनय=अभि+नी+अच्।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** उल्लास।

**छन्द-** वंशस्थ।

**असंपदस्तस्य वृषेण गच्छतः, प्रभिन्नदिग्वारणवाहनो वृषा।**
**करोति पादावुपगम्य मौलिना, विनिद्रमन्दाररजोरुणाङ्गुली ॥८०॥**

**प्रसंग-** इस स्थान पर भी पार्वती शिव का गुणगान करती रहती है।

**अनुवाद-** मदमस्त श्रेष्ठ हाथी पर आरूढ इन्द्र धनहीन तथा बैल पर पर जाते हुए उस शिव के पैरों को मस्तक से स्पर्श करके खिले हुए मन्दार पुष्पों से अरुणित अंगुलियों वाला बना देता है।

**भावार्थ-** पार्वती ब्रह्मचारी रुप शिव से कहती हैं कि जिस इन्द्रादि को तुम श्रेष्ठ समझते हो, वह भले ही मदमस्त गजराज की सवारी करता हो, और अपने मस्तक पर लगे हुए मुकुट में मन्दारवृक्ष के पुष्पों को धारण करता हो, किंतु बैल पर सवारी करने वाले शिव के पैरों के नीचे जब वह मन्दार के पुष्प आजाते हैं, तो शिव के पैर भी लालिमा से युक्त हो जाते हैं।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** असम्पदस्तस्य=असम्पदः+तस्य (सन्धि), पादावुपगम्य= पादौ+उपगम्य (सन्धि), प्रभिन्नदिग्वारणवाहनः= दिशां दिशि वा वारणः दिग्वारणः (षष्ठी या तत्पुरुष

समास), प्रभिन्नः दिग्वारणः (कर्मधारय समास), प्रभिन्नदिग्वारणः वाहनं यस्य सः (बहुब्रीही समास), असम्पदः= अविद्यमाना सम्पद् यस्य सः (बहुब्रीही समास)।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** पर्यायोक्त।

**छन्द-** वंशस्थ।

**विवक्षता दोषमपि च्युतात्मना, त्वयैकमीशं प्रति साधु भाषितम्।**
**यमामनन्त्यात्मभुवोऽपि कारणं, कथं स लक्ष्यप्रभवो भविष्यति ॥८१॥**

**प्रसंग-** पार्वती शिव के वंश सम्बन्धी आक्षेप का उत्तर देती है।

**अनुवाद-** केवल दोषकथन के इच्छुक भी पतित आत्मा वाले तुम्हारे द्वारा शिव के विषय में एकबात ठीक ही कही गयी है। जिसको ब्रह्मा का भी कारण कहते हैं, उस शिव का उत्पत्ति स्थान कैसे ज्ञात होगा।

**भावार्थ-** पार्वती ब्रह्मचारी से कहती है कि जिस शिव की तुम इतनी निन्दा कर रहे थे, उसी की निन्दा करते करते समय तुमने अज्ञानवश ही एक सत्य बात कह दी और वह यह बात है कि शिव के कुल का पता ही नही है। यह सत्य भी है क्योंकि जो सबका कारण है, ब्रह्मा का भी कारण है, उसके कुल, परिवार , उत्पत्ति का स्थान का पता कैसे चलेगा?

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** त्वयैकमीशं=त्वया+एकम्+ईशम् (सन्धि), यमामनन्त्यात्मभुवोऽपि=यम्+आमनन्ति+आत्मभुवः+अपि (सन्धि), स लक्ष्यप्रभवो= सः+लक्ष्यप्रभवः (सन्धि), च्युतात्मना= च्युतः आत्मा यस्य सः च्युतात्मा तेन (बहुब्रीही समास), आत्मभुवोः=आत्मना भवतीति आत्मभूः तस्य (उपपद समास), लक्ष्यप्रभवः=लक्ष्यः प्रभवः यस्यः सः (बहुब्रीही समास), आत्मभुवः=आत्मन्+भू+क्विप्, षष्ठी विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** वक्रोक्ति।

**छन्द-** वंशस्थ।

**अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया, तथाविधस्तावादशेषमस्तु सः।**
**ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं, न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ॥८२॥**

**प्रसंग-** पार्वती कहती है कि उसे लोकनिन्दा का कोई भय नही है, अतः वह शिव में पूर्णतया अनुरुक्त है।

**अनुवाद-** विवाद करना व्यर्थ है, उसे तुम्हारे जैसा सुना गया है, पूर्णरुप से (वह शिव) वैसा ही हो। मेरा मन यहां एकमात्र प्रेमरुपी रस में ही स्थित है। स्वेच्छापूर्वक काम करने वाला व्यक्ति लोकनिन्दा को नही देखता है।

**भावार्थ-** पार्वती कहती है कि तुमने जिस प्रकार से शिव के चरित्र का वर्णन किया है, शिव वैसा भी है, तो भी कोई समस्या नही है। मुझे वह हर रुप में स्वीकार हैं। क्योंकि मैं शिव के प्रेमरुपी रस में पूर्णतया डूबी हुई हूं। मेरा यह निर्णय स्वेच्छा से लिया गया है। और स्वेच्छा से निर्णय लेने वाले को लोकनिन्दा का भय नही होता है।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** श्रुतस्त्वया=श्रुतः+त्वया (सन्धि), तथाविधस्तावदशेषमस्तु=तथाविधः+तावत्+अशेषम्+अस्तु (सन्धि), विवादेन=विरुद्धो वादः विवादः (प्रादि समास), भावैकरसम्=एकः रसः एकरसः (कर्मधारय समास), भावः एव एकरस यस्य तत् (बहुब्रीही समास), कामवृत्तिः= कामा वृत्तिः यस्य सः (बहुब्रीही समास), यथा=यद्+थाल्, वचनीयम्=वच्+अनीयर्+ द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** अर्थान्तरन्यास।

**छन्द-** वंशस्थ।

**निवार्यतामालि किमप्ययं बटुः, पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः।**

**न केवलं यो महतोऽपभाषते,श्रृणोति तस्मादपि यः स पापभाक् ॥८३॥**

**प्रसंग-** पार्वती इसप्रकार जब उत्तर देती है, तब ब्रह्मचारी कुछ कहना चाहते हैं किंतु क्रोधित पार्वती ब्रह्मचारी को कुछ कहने के लिये रोकने का इशारा करती है।

**अनुवाद-** हे सखी! कापते हुए अधरोष्ठ वाले पुनः कुछ कहने की इच्छा रखने वाले इस ब्रह्मचारी को रोक दो, क्योंकि जो महान लोगों की निन्दा करता है, न केवल वह ही पापभागी बनता है, अपितु जो सुनता है, वह भी पाप का भागी बनता है।

**भावार्थ-** पार्वती के इसप्रकार शिव का बखान करने पर ब्रह्मचारी कुछ कहना चाहता है, और यह भांपकर पार्वती अपने सखी से कहती है, कि तुम इस ब्रह्मचारी को कुछ भी अनिष्ट कहने से रोक दो,क्योंकि अनिष्ट वार्ता करने वाला तो पाप का भागी बनता ही है, साथ ही अनिष्ट वचन सुनने वाला मनुष्य भी पाप का भागी बनता है।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** किमप्ययं=किमपि+अयम् (सन्धि), पुनर्विविक्षुः= पुनः+विविक्षुः (सन्धि), महतोऽपभाषते=महतः+अपभाषते (सन्धि), तस्मादपि=तस्मात्+अपि (सन्धि), स्फुरितोत्तराधरः= उत्तरः च अधरश्च इति उत्तराधरम् (कर्मधारय समास), स्फुरितम् उत्तराधरं यस्य सः (बहुब्रीही समास), पापभाक्=पापं भुनक्ति य सः (बहुब्रीही समास), निवार्यताम्=नि+वृ+णिच्, लोट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** अर्थान्तरन्यास।

**छन्द-** वंशस्थ।

**इतो गमिष्याम्यथवेति वादिनी, चचाल बाला स्तनभिन्नवल्कला।**

**स्वरूपमास्थाय च तां कृतस्मितः, समाललम्बे वृषराजकेतनः ॥८४॥**

**प्रसंग-** इसके बाद जब पार्वती क्रोधित होकर जाने लगती है, तो शिव उसको रोकने के लिये अपने स्वरूप में आ जाते हैं।

**अनुवाद-** 'अथवा मैं ही यहां से चली जाऊगी' इस प्रकार कहने वाली स्तनों से हटे हुए वल्कल वाली कुमारी (पार्वती) चल पडी। (तब) बैल के ध्वजा चिह्न वाले (शिव ने) (अपने वास्तविक) स्वरूप को धारण करके मुस्कुराते हुए उसको पकड लिया।

**भावार्थ-** इसप्रकार क्रोधित हुई पार्वती को अपनी कोई सुध ही नही थी, अतः उसके वल्कल भी जो यथास्थान नही थे, उसका भी उसे भान न हुआ। और उसने अपनी सखी से कहा कि यदि इस ब्रह्मचारी ने और कुछ भी अनिष्ट कहने का प्रयत्न किया तो मै यहां से चली जाऊगीं। ऐसा कहकर जब वह वहां से उठकर जाने लगी, तो शिव अपने वास्तविक स्वरूप मे आ गये। और मुस्कुराते हुए उस पार्वती के हाथ को पकडकर रोका।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** इतो गमिष्याम्यथवेति=इतः+गमिष्यामि+अथवा+इति (सन्धि), स्तनभिन्नवल्कला=स्तनाभ्यां भिन्नम् इति स्तनभिन्नम् (सुप्सुपा समास), स्तनभिन्नं वल्कलं यस्याः सा (बहुब्रीही समास), वृषराजकेतनः=वृषाणां राजा इति वृषराजः (षष्ठी तत्पुरुष समास), स्वरूपम्=स्वं रूपम् (कर्मधारय समास), कृतस्मितः= कृतं स्मितं येन सः (बहुब्रीही समास)।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** परिकर।

**छन्द-** वंशस्थ।

**तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङगयष्टिर्निक्षेपणाय पदमुद्धतमुद्वहन्ती।**

**मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः, शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ॥८५॥**

**प्रसंग-**सहसा अपने शिव प्रिय को अपने सामने देखकर पार्वती व्याकुल हो जाती है। और किंकर्तव्यविमूढ हो जाती है।

**अनुवाद-** उस शिव को देखकर कम्पन और स्वेत से आर्द्र शरीर वाली, अन्यत्र गमन करने के लिये उठाए हुए चरणों को धारण करती हुई पर्वतराज की पुत्री, मार्ग में पर्वत आ जाने से व्याकुल, नदी के समान, न आगे जा सकी और न ठहर सकी।

**भावार्थ-** जैसे ही पार्वती को यह भान हुआ कि ये ब्रह्मचारी कोई और नही, बल्कि शिव ही है, वह आश्चर्यचकित हो गयी। अपनी भावनाओं को प्रकट करने मे असमर्थ हो गयी। और शिव को देखते ही वह कापने लगी, पसीने से ओतप्रोत हो गई। उसकी स्थिति बहती हुई नदी के समान हो गई, जो कि पर्वत से टकराकर न आगे जा सकती है, और न ही रुक सकती है। पार्वती भी न तो वहां से जा पा रही थी, और न ही वहां पर रुकने का सामर्थ्य जुटा पा रही थी।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-**मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव= मार्गाचलव्यतिकराकुलिता+इव (सन्धि), शैलाधिराजतनया=शैलानाम् अधिराजः (षष्ठी तत्पुरुष समास), तस्य तनया (षष्ठी तत्पुरुष समास), मार्गाचलव्यतिकराकुलिता=न चलः अचलः (नञ् समास), अचलस्य व्यतिकरः (षष्ठी तत्पुरुष समास), मार्गे अचलव्यतिकरः (सप्तमी तत्पुरुष समास), तेन आकुलिता (तृतीय समास), वेपथुमती=वेप् +अथुच्+मतुप्+ङीप्+ प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** उपमा।

**छन्द-** वसन्ततिलका।

**अद्य प्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः, क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ।**

**अह्नाय सा निजमयं क्लममुत्ससर्ज, क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ॥८६॥**

**प्रसंग-** पुनः शिव पार्वती से प्रेमपूर्वक कहना प्रारम्भ करते हैं।

**अनुवाद-** हे अवनत अंगों वाली पार्वती! आज से लेकर (मैं) तुम्हारी तपस्या से क्रीत दास हूं। इसप्रकार शिव के कहने पर वह (पार्वती) सहसा ही तप से उत्पन्न कष्ट को भूल गयी, क्योंकि कष्ट फलप्राप्ति हो जाने पर पुनः नवीनता को धारण कर लेता है।

**भावार्थ-** अपने वास्तविक स्वरूप मे प्रकट होकर शिव पार्वती से कहते हैं कि तुम्हारी द्वारा की गई तपस्या से मैं तुम्हारा स्वामी नही, अपितु सदा के लिये तुम्हारा दास बन चुका हूं। शिव के ऐसे प्रिय वचनों को सुनकर पार्वती अपने सारे कष्ट भूल गयी। क्योंकि जब कोई असहनीय कष्ट सहकर उसका फल प्राप्त कर लेता है, तो सारे कष्ट वह भूल जाता है। अतः पार्वती भी अपने सारे कष्टों को भूल गयी।

**व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी-** अद्यप्रभृत्यनवतांगि=अद्यप्रभृति+अवनतांगि (सन्धि), क्रीतस्तपोभिरिति=क्रीतः+तपोभिः+इति (सन्धि), अवनतांगि=अवनतम् अंगं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ (बहुब्रीही समास), नियमजाम्=नियमात् जायते तम् (उपपद समास), नवताम्= नवस्य भावः नवता ताम् (षष्ठी तत्पुरुष समास), नियमजम्=नियम+जन्+ ड, द्वितीया विभक्ति, एकवचन, उत्ससर्ज=उत्+सृज्, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

**काव्यगत वैशिष्टय-**

**अलंकार-** अर्थान्तरन्यास।

**छन्द-** वसन्ततिलका।

## 18.3 पारिभाषिक शब्दावली

**प्रार्थितदुर्लभ -** अभीष्ट होने पा भी दुर्लभ

**मिताक्षर -** थोडे से शब्दों में

**वधूदुकूलम्-** वधू का रेशमी वस्त्र

**ऊढया** - विवाहित

**हर -**शिव

**चिताभस्मरज -** चिता के भस्म की धूल

**अवनतांगि -** विनम्र अंगो वाली

## 18.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. श्लोक संख्या ६२की सप्रसंग व्याख्या करें।
2. श्लोक संख्या ६९की सप्रसंग व्याख्या करें।
3. श्लोक संख्या ७५की सप्रसंग व्याख्या करें।
4. श्लोक संख्या ८२ की सप्रसंग व्याख्या करें।

## 18.5 सारांश

यहां पर पार्वती की सखी पार्वती की दयनीय स्थिति बता रही है कि किसप्रकार शिव को प्राप्त करने की इच्छा से पार्वती तपस्या कर रही है। अतः ब्रह्मचारी ने पार्वती के प्रेम की सत्यता जानने के उद्देश्य

से शिव की अर्थात् स्वयं की निन्दा प्रारम्भ की। और शिव के दोषों को गिनाना प्रारम्भ किया कि वह श्मशान में रहते हैं, शरीर पर चिता की भस्म लगाते हैं, विकृत अंगों वाले हैं, इत्यादि अनेक प्रकार से उनकी निन्दा की। शिव की इतनी बुराईयां सुनने के बाद भी पार्वती अपने ढृढ निश्चय अपर अडिग रही। और उस ब्रह्मचारी पर क्रोधित होकर बोली कि मूर्ख व्यक्ति महान लोगों के चरित्र को नही समझ सकते हैं। और उनके वास्तविक स्वरूप को कोई नही जान सकता है। वह सबका कारण है। इत्यादि अनेक प्रकार से शिव की महिमा का गान किया। और फिर उठकर जाने लगी। इसपर ब्रह्मचारी ने अपना वास्तविक स्वरुप में प्रकट हो गये। और स्वयं को पार्वती का दास बताया। इतना सुनने मात्र से ही पार्वती अपना समस्त कष्ट भूल गई। और प्रसन्न हो गई।

## 18.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. पाण्डेय प्रद्युम्न, कुमारसम्भवम् (पञ्चम् सर्ग), चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013.
2. उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, टाइम टेबुल प्रेस, बनारस, 1947.
3. शर्मा , उमाशंकर, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा विश्वभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2007.
4. विश्वेवर आचार्य, काव्यप्रकाश (मम्मट कृत),ज्ञान मण्डल, वाराणसी, 1967.